पूर्वांचल खेती

श्री राम प्राण प्रतिष्ठा विशेषांक

वर्ष : 34 जनवरी 2024 अंक : 01

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

श्री राम प्राण प्रतिष्ठा विशेषांक

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

श्री राम प्राण प्रतिष्ठा विशेषांक

वर्ष 34 | जनवरी 2024 | अंक 01

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. के.एम. सिंह

वरिष्ठ प्रसार अधिकारी/सह प्राध्यापक

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

पोषण सुरक्षा हेतु करें श्री–अन्न की खेती 01
आर के आनन्द एवं रेनू सिंह

चीना की खेती 03
रामभरोसे, विनय कुमार एवं अनिल प्रताप सिंह दोहेर

केले की वैज्ञानिक खेती 05
शैलेन्द्र सिंह एवं मनोज कुमार

आंवले की वैज्ञानिक खेती 07
एस0 के0 वर्मा एवं के0 एम0 सिंह

विषाक्त पौधों की विषाक्तता पशुओं में प्रभाव, उपचार एवं बचाव के उपाय 10
विद्या सागर एवं राम जीत

करेला उत्पान की अद्यतन प्रौद्योगिकी 12
प्रमोद कुमार सिंह एवं अंकिता गौतम

सब्जियों को कीट और रोगों से कैसे बचाए 13
शैलेन्द्र सिंह एवं एस.के. सिंह

पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन वृद्धि में प्रोबायोटिक का महत्व एवं उपयोग 15
एस.के. सिंह, एस. के. तोमर एवं आर. आर. सिंह

दलहनी फसलों मे पोषक तत्व प्रबन्धन 18
के. एम. सिंह एवं आर आर. सिंह

मक्का की वैज्ञानिक खेती 21
उमेश बाबू, राम भरोसे एवं के0एम0 सिंह

तरल उर्वरकों का कृषि में प्रयोग 23
शिवदत्त पाण्डेय, आर. आर. सिंह एवं के.एम.सिंह

सफलता की कहानी 26
के.एम. सिंह, अशोक कुमार एवं आर.आर. सिंह

पावन धाम अयोध्या 27
श्री इन्द्र जीत सिंह 'अर्चक'

राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा 28
श्रीकृष्ण द्विवेदी ''अज्ञान ''

जनवरी माह में किसान भाई क्या करें 29

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 30

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	05542–248019	9415687643
2.	बस्ती	डॉ. एस.एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
4.	फैजाबाद	डॉ. विनायक शाही	05278–254522	8755011086
5.	मऊ	डॉ. वी.के. सिंह	0547–2536240	8005362591
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	0541–2260595	9458362153
7.	बहराइच	डॉ. पी.के. सिंह	05252–236650	8858859244
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	–	9455501727
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. प्रदीप कुमार	05541–241047	9129981158
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. शशिकान्त यादव	–	9415188020
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. पी.के. मिश्रा प्रभारी	–	9936645112
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. आर.के. सिंह	–	9452990600
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. विनय कुमार	–	–
25.	आजमगढ़ (लैदोरा)	डॉ. एल.सी. वर्मा	–	7376163318

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
2.	गोण्डा	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
3.	देवरिया	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
4.	गाजीपुर	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9026289336	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	8787289358	0548–223690

डॉ. बिजेन्द्र सिंह
कुलपति
Dr. Bijendra Singh
Vice-Chancellor

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229 (उ.प्र.), भारत
Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology
Kumarganj, Ayodhya - 224 229 (U.P.) India

संदेश

भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं समाज के पुनरोत्थान के इस पावन अवसर पर सर्वसमाज की प्रगति के लिये सदैव प्रयत्नशील आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को भी अपनी भागेदारी निभाने का सूक्ष्म अवसर प्राप्त हो रहा है, जो अत्यन्त ही सुखद है। दीन, हीन, असहाय के राम की जो परिकल्पना थी उसे आकार देने में यह कृषि विश्वविद्यालय निरन्तर गिलहरी प्रयास करता रहा है। परिणाम स्वरूप ग्रामीण, किसान, भूमिहीन, बेरोजगार, साधनहीन और असहाय महिलाओं, पुरूषों एवं नवयुवकों को अपना जीवन स्तर सुधारने के लिऐ तथा परिवारिक आय में वृद्धि के लिये उसकी आवश्कताओं के आधार पर कृषि, कृषि आधारित उद्यम, कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन की आधुनिक विकसित तकनीकों का प्रचार–प्रसार विश्वविद्यालय की प्रमुख गतिविधियों में शामिल है। हमारा प्रयास है कि भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी तथा मुख्यमंत्री आदरणीय योगी आदित्यनाथ जी के मार्गदर्शन में अयोध्या जी में आम जनमानस के श्रद्धा के केन्द्र श्री राम जन्म भूमि के साथ जनपद को तीर्थ क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा रहा है उस कड़ी में हमारा प्रयास है कि आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय प्रत्येक ग्रामीण किसान युवा व महिला के लिये कृषि तीर्थ के रूप में अपनी अमिट पहचान बनाये। अगामी 22 जनवरी, 2024 को अयोध्या धाम में श्री राम प्राण प्रतिष्ठा के पुण्य अवसर पर आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के प्रसार निदेशालय द्वारा प्रकाशित की जाने वाली मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती के श्री राम प्राण प्रतिष्ठा विशेषांक के रूप में किये जा रहे प्रकाशन के लिये मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों, प्रसार कार्यकर्ताओं, किसानों व अयोध्या वासियों समेत समस्त देशवासियों को अपनी शुभकामनायें देता हूँ।

(बिजेन्द्र सिंह)
कुलपति

Ph.: *(05270) 262161 (O)* **Telefax :** *262097 (O)* **Ph.:** *262842 (R)* **Telefax :** *262032 (R)* **Email :** *vcnduat2018@gmail.com*

डॉ. आर. आर. सिंह
अपर निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

भारत के धार्मिक पुर्नजागरण की वेला में सर्वग्राही मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम की जन्मभूमि पर नव निर्मित मन्दिर में भगवान श्री राम प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या के प्रसार निदेशालय द्वारा पूर्वांचल खेती पत्रिका के श्री राम प्राण प्रतिष्ठा विशेषांक का प्रकाशन किया जाना सुनिश्चित किया गया। इस विशेषांक के प्रकाशन का निर्णय लिये जाने के बाद जब प्राण प्रतिष्ठा समारोह, भगवान श्री राम की जीवन यात्रा तथा कृषि व इससे सम्बन्धित क्षेत्र के लिये कार्य कर रहे इस कृषि विश्वविद्यालय के कर्तव्यों को एक सूत्र में पिरो कर देखा तो यह अहसास हुआ कि मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम के जीवन का सबसे ज्यादा समय समाज की निचली पायदान के कोल, भील, वनचर के जीवन स्तर के उत्थान के कार्यों में बीता था। भगवान राम के प्राण–प्रतिष्ठा जैसे पवित्र अवसर पर कृषि क्षेत्र के लिये अपनी सेवायें दे रहे है वैज्ञानिक शिक्षक, विद्यार्थी व प्रसार कार्यकर्ताओं की यह जिम्मेदारी बनती है, कि वे कृषि आधारित कार्यों से जीवन यापन कर रहे छोट से छोटे वर्ग व परिवार के सामाजिक जीवन स्तर को ऊपर उठाने में अपना योगदान देते रहें। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर पूर्वांचल खेती पत्रिका के प्रस्तुत अंक में कृषि, बागवानी, सब्जी, पुष्प उत्पादन समेत पशुपालन आदि विषयों पर वैज्ञानिक लेख प्रस्तुत हैं। आशा है कि यह अंक सभी किसान भाइयों, युवाओं व प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

(आर.आर. सिंह)

पोषण सुरक्षा हेतु करें श्री-अन्न की खेती

आर के आनन्द* एवं रेनू सिंह**

आधुनिकता के इस दौड़ में न सिर्फ खान पान की व्यवस्था में परिवर्तन आया है बल्कि खेती किसानी भी बदल गयी है। ज्यादा नहीं आज से सिर्फ तीन–चार दशक पहले हमारे खाने की परंपरा बिल्कुल अलग थी। हम सभी गाँव में ही पैदा होने वाले पौष्टिक खाद्य पदार्थों का सेवन करते थे। हमारी थाली का अधिकांश भाग हमारे खेत से ही आता था जो कि पूर्णतया शुद्ध एवं पौष्टिक होता था। हमारे भोजन में ज्वार, बाजरा, रागी (मडुआ), सवां, कोदों जैसे मोटे अनाजों का पूर्ण समावेश था और यही हमारे पुरखों की लम्बी उम्र और सेहत का असली राज हुआ करता था, जो उन्हें सर्दी, गर्मी और बरसात से बेपरवाह रखता था। लेकिन, देखते ही देखते हमने गेहूं व चावल को अपनी थाली में सजा लिया और मोटे अनाज को खुद से दूर कर दिया। जिस अनाज को हमारी कई पीढियां खाते आ रही थी, उससे हमने मुंह मोड़ लिया और आज हम आधुनिकता की होड़ में बाजार आधारित खाद्य पदार्थों की तरफ ज्यादा आकर्षित होते है। यही कारण है कि हमारा पेट तो भर रहा है परन्तु हमें सही पोषण नहीं मिल पा रहा है और हमारी कमाई का एक बड़ा हिस्सा बीमारियों के इलाज में खर्च हो रहा है।

इसलिए आज आवश्यकता है कि पोषण से भरपूर मोटे अनाजों को फिर से थाली में वापस लाकर इस पर भूली हुयी फसल का टैग हटायें। पोषण से भरपूर पारंपरिक मोटे अनाजों को कम लागत पर उत्पादित किया जा सकता है तथा महंगाई के इस दौर में मोटे अनाज गरीबों की पौष्टिक भोजन की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हैं। मोटे अनाजों को अधिक पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसकी खेती दूसरी फसलों के मुकाबले आसानी से की जा सकती है। इसमे कीट व्याधियों का प्रकोप भी कम होता है

मोटे अनाजों की इन्ही सब विशेषताओं को देखते हुए इसको **"श्री–अन्न"** नाम दिया गया है। यह कीट पंतगों से होने वाले रोगों से भी बचे रहते हैं। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों से मोटे अनाजों को हमारी थाली में वापस लाने हेतु ठोस वैश्विक प्रयास किये जा रहे है। मोटे अनाजों के मूल्य संवर्धन तकनीकी विकसित करने पर तेजी से काम किया जा रहा है। मोटे अनाजों से नूडल्स, सेवईं, पास्ता, मैक्रोनी, बिस्कुट, दलिया, चूरा आदि बनाने की तकनीकी विकसित की जा चुकी है। साल 2018 को भारत में 'ईयर ऑफ मिलेट्स' के रूप में मनाया गया था। भारत के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए संयुक्त राष्ट्र ने साल 2023 को 'इंटरनेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स' के रूप में मनाने का फैसला किया।

मोटे अनाजों का प्रकार

मोटे अनाजों (पौष्टिक अनाजों) को तीन भागों में बांटा गया है। पहला प्रमुख मोटे अनाज (Major Millets) जिसमे ज्वार, बाजरा, रागी आते है तथा दुसरे लघु या गौण मोटे अनाज (Minor Millets) में सावां, कोदो, कुटकी, काकुन (कांगनी), चेना (जेठी सावां) आते है। तीसरे प्रकार में पौष्टिकता के दृष्टि से कुछ अन्य फसलों को रखा गया है जिनको छद्म अनाज (Pseudo Cereals) कहते हैं इसमें राम दाना एवं कुट्टू आते है।

मोटे अनाजों की पोषण विशेषता

कुपोषण की मुश्किल चुनौती, जो एक बड़ी आबादी को घेरे हुए है, उससे छुटकारा पाने का सबसे कारगर तरीका है मोटे अनाजों का सेवन क्योंकि मोटे अनाज पोषक तत्वों का भंडार हैं। चावल और गेहूं की तुलना में इनमें अधिक पोषक तत्व पाए जाते हैं। मोटे अनाजों में बीटा–कैरोटीन, नाइयासिन, विटामिन–बी6, फोलिक एसिड, कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, जिंक आदि खनिज लवण और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहद फायदेमंद रेशा भरपूर मात्रा में पाया जाता है। पोषण और स्वास्थ्य की दृष्टि से इसके फायदों के कारण ही इन्हें सुपरफूड भी कहा जाता है। इनका सेवन वजन कम करने, शरीर में उच्च रक्तचाप और अत्यधिक कोलेस्ट्राल को कम करने, हृदय रोग, मधुमेह और कैंसर जैसे रोगों के

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, **एस.एम.एस., गृह विज्ञान, के वी के अमेठी, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

चावल एवं गेंहूँ की तुलना में मोटे अनाजों का पोषक मान

मोटे अनाजों का प्रकार	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	वसा	कैल्सियम	आयरन	कापर
ज्वार	9.97	67.66	10.22	1.73	27.60	3.95	0.45
बाजरा	10.96	61.78	11.49	5.43	27.35	6.42	0.54
रागी	7.16	66.82	11.18	1.92	363.00	4.62	0.67
सावां	6.20	65.55	4.40	2.20	11.00	15.20	0.60
कोदो	8.92	66.19	6.39	2.55	15.27	2.34	0.26
कुटकी	8.92	65.55	6.39	2.55	16.00	1.26	0.34
काकुन	12.30	60.09	8.00	4.30	31.00	2.80	1.40
चेना	12.50	70.04	2.20	1.10	14.00	0.80	1.60
चावल (धान)	7.94	78.24	2.81	0.52	7.49	0.002	0.23
गेंहूँ आंटा	10.36	74.27	2.76	0.76	30.40	1.77	0.17

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, रेशा, वसाः ग्राम प्रति 100 ग्राम भार श्रोतः *IIMR* हैदराबाद
कैल्सियम, आयरन एवं कापर : मिलीग्राम प्रति ग्राम भार

जोखिम को कम करने के साथ–साथ कब्ज और अपच से भी निजात दिलाने में मदद करता है।

मोटे अनाजों की कृषि तकनीक

लगभग सभी मोटे अनाजों के उत्पादन में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती है। ये अनाज कम पानी और कम उपजाऊ भूमि में भी उग जाते हैं. धान और गेहूं की तुलना में मोटे अनाज के उत्पादन में पानी की खपत बहुत कम होती है। इसकी खेती में उर्वरकों और दूसरे रसायनों की जरूरत भी बहुत कम पड़ती। इसलिए प्राकृतिक विधि से बिना किसी कृषि रासायनिक उर्वरकों एवं दवाओं के मोटे अनाजों की खेती कम लागत में आसानी से की जा सकती है। ये पर्यावरण के लिए भी बेहतर होता है। साथ ही किसानों को कम लागत में अधिक मुनाफा भी होता है। प्रमुख मोटे अनाजों की कृषि तकनीकी निम्नवत है।

मोटे अनाजों (श्री–अन्न) की कृषि तकनीकी एक दृष्टी में

क्रम संख्या	फसल	प्रजाति	बुवाई का समय	बीज दर (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)	कटाई का समय	औसत उपज (कुंतल प्रति हे)	सामान्य उपयोग विधि
1	ज्वार	CSH-14, 16, 18, CSV-17, CSV 18 R, CSV 22 R	जून के तीसरे सप्ताह से जुलाई के पहले सप्ताह	10–12	सितम्बर–अक्टूबर	20– 30	आंटे के रूप में
2	बाजरा	W.C.C-75, NDFB-3, ICTP 8201, ICMH-451 Pusa-322, Pusa-23, M.P-383	जून –जुलाई	4–5 छिटकवा विधि	सितम्बर–अक्टूबर	16– 20 संकुल प्रजाति 80– 30 संकर प्रजाति	आंटे के रूप में
3	रागी	VL-352, VL- 376, VL- 379, GPU-28, GPU-67	जून का द्वितीय पखवाड़ा से जुलाई का प्रथम पखवाड़ा	5–8 छिटकवा विधि 3–4 रोपाई विधि	सितम्बर–अक्टूबर	15– 20	आंटे के रूप में
4	सावां	VL 172 and VL 207, VL 29, DHBM-93-3	जून –जुलाई	8–12 छिटकवा विधि 7–8 लाईन में बुवाई	सितम्बर–अक्टूबर	12– 15	चावल के रूप में
5	कोदो	JK 439, RBK 155, JK 13, JK 65 and JK 48, JK 137, RK 390-75, JK 106, GPUK 3, JK-98, DSP-9-1, TNAU-86	जून का द्वितीय पखवाड़ा से जुलाई का प्रथम पखवाड़	8–12 छिटकवा विधि 6–8 लाईन में बुवाई	सितम्बर–अक्टूबर	15– 18	चावल के रूप में
6	कुटकी (कांगनी)	JK-4, JK-8, JK-36, JK-137, DHLM 36-3, DHLM 14-1	जून –जुलाई	6–7 छिटकवा विधि 4–5 लाईन में बुवाई	सितम्बर–अक्टूबर	12– 15	चावल के रूप में
7	कुन	PRK 1, PS 4, PS-4, SiA 3088, SiA 3085, S-114, SiA 326	जून –जुलाई	8–10 छिटकवा विधि 7–8 लाईन में बुवाई	सितम्बर–अक्टूबर	18– 22	चावल के रूप में
8	चेना	TNAU-145, TNAU-164, TNAU-151, PRC-1, ATL-1, BR-7,	मार्च–अप्रैल	8–10 छिटकवा विधि 7–8 लाईन में बुवाई	मई–जून	10– 15	चावल के रूप में

चीना की खेती

रामभरोसे, विनय कुमार एवं अनिल प्रताप सिंह दोहरे

भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र को वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय बाजरा वर्ष (IYOM) के रूप में घोषित करने का सुझाव दिया था। भारत को 72 अन्य देशों का समर्थन मिला, 5 मार्च 2021 को, संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) ने 2023 को अंतर्राष्ट्रीय बाजरा वर्ष के रूप में घोषित किया। यह आबादी को बाजरा लाभों के बारे में जागरूक करके और देश और दुनिया भर में बाजरा के मूल्य वर्धित की स्वीकार्यता को बढ़ाने के लिये किया गया।

चीना, भारत, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान तथा अन्य दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में व्यापक रूप से उगाया जाता है इसका उत्पत्ति स्थान मिस्र और अरब को माना जाता है और पूर्व–एतिहासिक काल में एशिया माइनर और दक्षिणी यूरोप में इसकी खेती की जा रही है बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, गुजरात, उड़ीसा, तमिलनाडु और जम्मू–कश्मीर में कुछ स्थानों पर इसकी खेती की जाती है आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व तक भारत में पौष्टिक अनाजों को व्यापक क्षेत्र पर उगाया जाता था। हरित कांति आने के बाद इन फसलों के स्थान पर गेहूं एवं धान की खेती होने लगी। इसका मुख्य कारण इन फसलों की उत्पादकता का अधिक होना तथा सरकार द्वारा खरीद की एमएसपी को सुनिश्चित करवाना था फलस्वरूप बहुत पौष्टिक अनाजों का क्षेत्रफल निरंतर घटता चला गया। वर्तमान में पौष्टिक अनाजों में सिर्फ ज्वार और बाजरा की खेती सबसे अधिक क्षेत्र पर की जा रही है। उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र के कुछ जिलों में हमीरपुर, ललितपुर में भी उगाए जा रहे हैं। इन फसलों को कम उगाने जाने के पीछे कई कारण है जिसमें मुख्य परिवार में होने वाली वृद्धि अन्य फसलों की उपज व कीमत अधिक होना तथा बाजार की उपलब्धता आदि शामिल है। दानों के आकार के अनुसार पौष्टिक अनाजों को मूलतः दो भागों में विभाजित किया गया है तथा वर्गीकरण में पौष्टिक अनाज जिसमें बाजरा और ज्वार आते हैं दूसरे वर्गीकरण में छोटे दाने वाले पौष्टिक अनाज जैसे रागी, सांवा, कोदो, चीना और कुटकी सम्मिलित है।

यदि हम बात करें मोटे अनाजों के पौष्टिक महत्व की तो गेहूं, चावल, मक्का के अनुपात में यह पैमाने पर खरे उतरते हैं। हमारी बदलते जीवनशैली में अव्यस्थित खान–पान और रहन–सहन से उत्पन्न कई रोगों से निजात पाने में ये मोटे अनाज महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ह्रदय रोग, कैंसर, गठिया रोग, सूजन का खतरा कम करते हैं और शरीर की इम्यूनिटी को बेहतर बनाते हैं। इसमें प्रोटीन, वसा, लौह, रेशा, कैल्शियम और जिंक की भी भरपूर मात्रा होती है।

100 ग्राम रागी में पोषक तत्वों की मात्रा

क्र0स0	पोषक तत्व	मात्रा
1	प्रोटीन (ग्राम)	12.50
2	वसा (ग्राम)	1.10
3	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	70.4
4	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	341
5	कैल्शियम (ग्राम)	14
6	आयरन (मि0ग्रा0)	0.80
7	फास्फोरस (मि0ग्रा0)	206
8	मैग्नीशियम (मि0ग्रा0)	153
9	जिंक (मि0ग्रा0)	1.40

जलवायु

इसकी सी–4 प्रकाश संश्लेषक प्रणाली के कारण, प्रोसो बाजरा मक्का की तरह थर्मोफिलिक है, इसलिए खेत के छायादार स्थानों से बचना चाहिए। यह 10 से 13 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान के प्रति संवेदनशील है। चीना अत्यधिक सूखा प्रतिरोधी है, जो इसे कम पानी की उपलब्धता और बारिश के बिना लंबी अवधि वाले क्षेत्रों में रुचि रखता है।

खेत की तैयारी

चीना की खेती के लिए शुरुआत में खेत की तैयारी के दौरान खेत में मौजूद पुरानी फसलों के अवशेषों को नष्ट कर खेत की मिट्टी पलटने वाले हलों से गहरी जुताई कर दें। उसके बाद कुछ दिन खेत को खुला छोड़ दें. ताकि सूर्य की धूप से मिट्टी में मौजूद हानिकारक कीट नष्ट हो जाएं।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक की मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर ही प्रयोग करें। सामान्य परिस्थिति में 5 से 6 टन गोबर

कृषि विज्ञान केन्द्र श्रावस्ती, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

की खाद 50 किग्रा वजन 30 किग्रा फास्फोरस 20 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से फसल को देनी चाहिए।

उन्नतशील किस्में

डीएचपीएम 2769, टीएनएयू 145, टीएनएय164, टीएनएय 151, टीएनएय 202, जीपीयूपी 8, पीयूपी 21, को 1, एमएस 4872, एमएस 4884, पीवी 196, पीवी 1685, बीआर 7, पीएमवी 442 पीआरसी, सीओ, एटीएल ।

बीज की मात्रा

कतार में बुआई के हेतु बीजदर 10 किलो प्रति हेक्टेयर तथा छिंटकवा पद्धति के लिए 15 किलो प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बोआई का समय

राज्य में सिंचित दशाओं में चीना की रवि की फसल की कटाई के पश्चात एवं खरीफ की फसल की बुवाई के पहले कैच क्राप के रूप में उगाया जाता है इस दशा में फसल की बुवाई अप्रैल के द्वितीय पखवाड़े में की जाती है जबकि अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में इसकी बुवाई खरीफ की फसलों के साथ–साथ की जाती है

सिंचाई

सामान्यतः इसमें सिंचाई की ज्यादा आवश्यकता नहीं होती तथा अगर आवश्यकता है, तो कल्ले बनने व बाली निकलने की अवस्था मे नमी की ज्यादा आवश्यकता होती है अतः बारिश ना होने पर इन अवस्थाओं में सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबंधन

चीना की फसल में एक निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है फसल की बुवाई के 20 से 25 दिन बाद फसल की निराई गुड़ाई कर देना चाहिए अथवा खरपतवार प्रबंधन के लिए पेंडीमैथलीन 0.75 किलोग्राम सक्रिय तत्व अंकुरण से पूर्व अथवा 2,4–डी 0.75 किलोग्राम सक्रिय तत्व बुवाई के 20 से 25 दिन बाद कर देना चाहिए इससे हमारे खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता हैं।

रोग एवं कीट

भूरा धब्बा रोगः इस फफूंदजनित रोग का संक्रमण पौधे की सभी अवस्थाओं में हो सकता है। प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे–छोटे हल्के भूरे एवं अंडाकार धब्बे बनते है। बाद में इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है। अनुकूल अवस्था में ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को समय से पूर्व सुखा देते है। बालियों एवं दानों पर संक्रमण होने पर दानों का उचित विकास नहीं हो पाता, दाने सिकुड़ जाते है जिससे उपज में कमी आती है।

रोकथाम

- बोआई पूर्व बीजों को फफूंदनाशक दवा मेन्कोजेब, कार्बेन्डाजिम या कार्बोक्सिन या इनके मिश्रण से 2 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचारित करें।
- खड़ी फसल पर लक्षण दिखायी पड़ने पर कार्बेन्डाजिम, कीटाजिन या इडीफेनफास (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) या मेन्कोजेब 2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करें। 10 से 12 दिन के बाद एक छिड़काव पुनः करें।
- जैव रसायन स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स का पर्ण छिड़काव (0.2 प्रतिशत) भी झुलसन के संक्रमण को रोकता है।
- रोगरोधी किस्मों जैसे भैरवी का बोआई हेतु चयन करें।

कन्डुवा रोगः कन्डुवा रोग के नियंत्रण हेतु बीजों को वाइटावैक्स 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें तथा रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।

प्ररोह मक्खी

रोकथाम– इस कीट के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट 30.00 प्रतिशत ईसी @ 462 मिली और थायमेथोक्साम 12.60 प्रतिशत+लैंबडा–सायलोथ्रिन 09.50 प्रतिशत zc@ 50 ग्राम प्रति 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। इस दवा का छिड़काव कर इन कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।

फसल की कटाई

चीना के पौधे बीज रोपाई के लगभग 70 से 75 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। जिसके बाद इसके सिरों को पौधों से काटकर अलग कर लें। सिरों की कटाई करने के बाद उन्हें खेत में ही एकत्रित कर कुछ दिन सुखा लें। उसके बाद जब दाना अच्छे से सूख जाए तब मशीन की सहायता से दानों को अलग कर एकत्रित कर बोरों में भर लें।

उत्पादन

चीना एक हेक्टेयर में 18 से 20 कुंतल प्रति हेक्टेयर की दर से उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं तथा कुछ किस्मों का उत्पादन 20 से 24 कुंतल प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त कर अच्छा मुनाफा भी प्राप्त किया जा सकता है।

केले की वैज्ञानिक खेती

शैलेन्द्र सिंह एवं मनोज कुमार

जलवायु : केला ऊष्ण कटिबंधीय फल है यह आर्द्र तथा उपोष्ण और 2000 एम.एस.एल. की ऊंचाई को भी सह सकता है। यह कम तापमान तथा पानी की रुकावट को नहीं सह सकता। नए पत्तों का निकलना तथा फलों का विकास मुख्यतः तापमान पर निर्भर करता है

मिट्टीः गहरी दुमट, हवादार और हल्की मिट्टी में यह अच्छा उगता है। यह 6.5 से 8.0 तक के पी.एच. को सह सकता

प्रजातियां : ग्रेड नेन, रोबस्टा, ड्वार्फ, केवेन्डिश, पूवन, रसथाली, नेन्दन, करपूरवल्ली, नेय पूवन, मोन्थान तथा पहाड़ी के कुछ प्रमुख प्रजातियां हैं।

प्रतिपादन : पारम्परिक तरीके से सकर अर्थात पौध या फिर कन्दों के जरिए केले के पौधों को उगाया जाता है। चौड़े पानीदार सकरों की अपेक्षा तलवार या खड्ग के आकार के और लम्बे पत्तों वाले सकर को चुना जाता है। छटाई किए गए सकर अथवा टुकड़ों का वजन 1.0 से 1.5 किग्रा तक होना चाहिए, जिसमें से अंकुर फूट रहा हो। रोपण सामग्री का वर्गीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इससे फसल का विकास और धारों के निकलने का समय, सभी में एक रुपता होती है। सकर की अपेक्षा ऊतक संवर्द्धन द्वारा प्रतिपादित पौधों के महत्व को पहचानते हुए आज ऊतक संबधित पौधे रोगरहित होने के कारण अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं तथापि ऊतक संवर्धन द्वारा केले की खेती में शुरुआत की लागत अधिक होती है।

रोपण : रोपण से पहले 45 गुणा 45 गुणा 45 सेमी0 गढ्ढों में अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर खाद डाला जाता है अथवा उन गढ्ढों में 20–30 किलो/गड्ढा कम्पोस्ट भरा जाता है। चुने हुए सकर की अनावश्यक पत्तिया, वानस्पतिक विकास और अत्यधिक जड़ों आदि को काट दिया जाता है। इन सकरों को सूत्र कृमि एवं तना विविल से बचाने के लिए कन्दों को मिट्टी के घोल में 20–10 कण/सकर के हिसाब से कार्बोफ्यूरान डालकर उसमें इन्हें डुबा दिया जाता है। जून–जुलाई रोपण के लिए उचित महीने हैं। वैसे तो वर्ष में किसी भी समय रोपण किया जा सकता है बशर्ते सर्दियों को छोड़कर अन्य मौसम में सिंचाई की पूरी सुविधा हो।

घने रोपण से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। महाराष्ट्र में एक हेक्टेयर में 4500 पौधे लगाये गए, जबकि अन्य राज्यों में 2 अथवा 3 चक्रों में 3000 से 3500 पौधों का इस्तेमाल किया गया। ग्रेन्ड नेन रोस्ट वाफ के विडिश (महाराष्ट्र और गुजरात), मालभा (पश्चिम बंगाल) और पूवन (केरल और तमिलनाडू) के लिए दुहरी कतार वाली प्रक्रिया अपनाई गई है। इस पद्धति में कतारों के बीच 1.2 मी० और दो कतारों के बीच 1.8 से 2.0 मीटर तक की दूरी रखी जाती है। पौधों के बीच 1.2 मीटर का फासला रखा जाता है। रोबस्टा, ड्वार्फ केवेन्डिश, राजापुरी, बसराय और कोथिया 1.5 ग 1.5 मीटर की दूरी पर (4444 पौधे प्रति हेक्टेयर) लगाया जा सकता है।

उर्वरक डालना : केले के प्रत्येक पौधे के लिए 150–200 ग्राम नाइट्रोजन, 40–60 ग्राम फास्फोरस और 200–300 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। यह खुराक मिट्टी और किस्म पर भी निर्भर करती है। नाइट्रोजन और पोटाश को चार खुराकों में डाला जाना चाहिए अर्थात रोपण के 30, 75, 120 और 165 दिनों बाद डालना चाहिए, जबकि फास्फोरस को रोपण के समय ही डाला जाता है। पुनरूत्पादन अवस्था में नाइट्रोजन का एक चौथाई हिस्सा और पोटाश का एक तिहाई हिस्सा डालना लाभदायक पाया गया। बूंद सिंचाई द्वारा उर्वरक डालने से पौधों की पोषण क्षमता में वृद्धि देखी गयी। इसके साथ ही आई.आई.एच.आर. द्वारा तैयार किया गया बनाना स्पेशल (5 ग्राम/ली) को 15 लीटर पानी में। शैम्पू सैशे के साथ मिलाकर छिड़कना भी उचित पाया गया। यह छिड़काव 16 पत्ती और 30 पत्ती अवस्था में किया जाना चाहिए। घार

कृषि विज्ञान केंद्र, बेलीपार, गोरखपुर, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या

निकलने के 30 और 60 दिनों के बाद इसके दो छिड़काव किए जाते ।

सिंचाई : अधिक सूखी मिट्टी और गर्म मौसम में केले को कम अंतर पर पानी डालना पड़ता है। औसतन, रोबस्टा के लिए गरम महीनों अर्थात फरवरी से मई तक 3 इंच एकड़ सिंचाई की जरूरत होती है। बूंद सिंचाई दिन–ब–दिन महत्वपूर्ण होती जा रही है और हर जगह खासकर कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यह बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। केले के पौधों में पर्याप्त पानी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए माइक्रो ट्यूब वाले दो एमीटर (4) ली / घंटे) को पौधों से 25 सेमी दूर पर रख देना चाहिए जो वाष्पीकृत पानी का 75–80 प्रतिशत कमी को पूरा करता है।

डीसकरिंगः मातृ पौधे में फूल आने तक सभी सकर को निकाल देते हैं और बाद में केवल एक सकर को ही रखा जाता है। डीसकरिंग का यही सबसे अच्छा तरीका है फिर भी घने रोपण में कटाई के उपरान्त सकर को बढ़ने नहीं देना चाहिए ताकि अगले फसल में सारी शस्य क्रियाओं में एकरूपता बनी रहे।

खरपतवार नियंत्रण : प्रारम्भिक छः महीनों में खरपतवार नियंत्रण से उर्वरक तथा उपज में बढ़ोत्तरी होती है। दोहरी अंतर शस्य से खरपतवार दब जाते हैं और उस अंतर शस्य को पुष्पण के समय जमीन में गाडकर और ऊपर से ग्लाइफोसेट 150 – 200 मिलीलीटर प्रति 15 लीटर पानी की दर से रोपण के 60 दिनों बाद छिड़काने की सिफारिश की गई है।

ट्रेशिंग : सूखे पत्तों पर कीड़े दीर्घ निद्रा में सोते हैं और अनेक रोगों का कारण बनते हैं इन्हें कभी – कभी निकालते रहना चाहिए। पौधे से हरे पत्ते कभी न काटें।

स्टाइल, पेरिन्थ और नर कली नाश : इससे फिंगर टिप रोग का नियंत्रण हो जाता है। जब घेरा (धार) बहुत छोटा होता है उसी समय पेरिन्थ और स्टाइल निकाल दें। नर कली अथवा हार्ट को तब निकालें जब घार में अंतिम गुच्छा आ जाता है और फूल ऊपर की तरफ मुड़ने लगते हैं।

सहारा देना : ऊंचे किस्मों के लिए सहारा देना बहुत जरूरी है। बांस केसुनिया या नीलगिरी के लट्ठों से सहारा दिया जात है। सस्ते साधन के प्लास्टिक या रस्सी का भी इस्तेमाल करते हैं।

मिट्टी चढ़ाना : ढाल से मिट्टी के बहाव को रोकने के लिए 2–3 महीने में एक बार पौधे के चारों ओर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है ताकि स्यूडोस्टेम का पानी से सीधा सम्बन्ध न बने।

मेटोकिंगः घार की कटाई के बाद तने को विभिन्न अवस्था में काटते जाना चाहिए ताकि 40–50 दिनों तक अगले रेटून फसल को पोषण मिलती रहे।

कटाई : केले की परिपक्वता मानक है फलों में कोणीय भाग न रह कर वे भरे हुए हो जाएँ। बाजार की दूरी के आधार पर तीन चौथाई अथवा पूर्ण पक्व अवस्था में कटाई की जानी चाहिए। फलों का भरा हुआ होना केवल कुछ ही किस्मों के लिए लागू होता है जैसे रोवस्टा, ग्रेन्ड नैन, ड्वार्फ केवेन्डिश, रसथाली और नेय पूवन। यह सिद्धांत सब्जी वाले केले को लागू नहीं होता क्योंकि वे पूरे तैयार अवस्था में भी कोणीय ही रहते हैं।

पैदावार : केंवेन्डिश की औसत उपज 50–100 टन/हेक्टेयर है तथा अच्छी खेती विधि, घना रोपण आदि से 150 टन/हे. उपज प्राप्त की जा सकती है। पूवन, रसथाली और मोन्थान जैसी किस्में 40–65 टन/हे. उपज देती हैं।

अर्धशास्त्र : 26 महीने में दो फसल चक्र (सीधा फसल तथा रेटून फसल) द्वारा रोबस्टा में घने रोपण से हेक्टेयर 1.5 गुणा 1.5 मी0 की दूरी रखकर 4444 पौधे लगाए जाने पर 15 – 18 लाख रूपये शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

केले का उपयोग

1. केले के पत्तियों को पूजा, खाना खिलाने में उपयोग किया जाता है।

2. केले के पत्ते, फलों को प्रदास के रूप में प्रयोग करते हैं।

3. केले में पर्याप्त मात्रा लोहा होता है जिसकी वजह से माल न्यूट्रीशन को दूर करने में प्रयोग करते हैं।

4. केले के तनों से रेशा निकालकर, विभिन्न प्रकार की रस्सियां व सामान तैयार किये जाते हैं।

5. केले फलों को वैलू एडीशन कर चिप्स, स्नैक आदि बनाए जाते हैं।

आंवले की वैज्ञानिक खेती

एस0 के0 वर्मा* एवं के0 एम0 सिंह**

आवंला भारतीय मूल का एक महत्वपूर्ण फल हैं। इसे हिन्दी में 'आवंला' संस्कृत में 'धात्री' तथा अंग्रेजी में एम्बलिका आफीसिनेलिस या 'इंडियन गूज बेरी' के नाम से जानते है। अपने अद्वितीय औषधीय तथा पोषक गुणों के कारण वेद पुराण, कादम्बरी तथा चरक संहिता जैसे भारतीय पुराणों में इसे 'अमृत फल' के रूप में माना गया है। अपने गुणों के कारण आंवला 21वीं सदी का प्रमुख फल हो सकता है।

आवंला एक मध्यम ऊंचाई वाला फल वृक्ष है, जो कि उबड–खाबड तथा बंजर भूमि पर आसानी से फसल के रूप में उगाया जा सकता है। जहां पर पानी की कमी है वहां पर भी इस फसल को आसानी से पैदा किया जा सकता है, इसका पौधा तेजी से बढता है जो दो–तीन वर्षों में फल देने लायक हो जाता है। इसके फलों मे खारापन होने के कारण पक्षियों से भी कोई नुकसान नही होता है। आंवले के पौधे के प्रत्येक भाग का आर्थिक महत्व है। जिसके कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

उत्पत्ति स्थान एवं वितरणः आवंला का उत्पत्ति स्थान दक्षिण पूर्व एशिया का भाग, विशेष रूप से मध्य एवं दक्षिण भारत माना जाता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक रूप से इसके वृक्ष क्यूबा, पोर्टरिको, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, श्रीलंका, मलेशिया, चीन, इण्डोनेशिया तथा वेस्टइंडीज में भी पायें जातें हैं। इसकी खेती भारत के उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराश्ट्र व तमिलनाडु में अधिक प्रचलित है। आंवले की व्यवसायिक खेती अधिकतर उत्तर प्रदेश के जिलों जैसे प्रतापगढ, रायबरेली, वाराणसी, बांदा, जौनपुर, सुल्तानपुर, कानपुर, आगरा, मथुरा, इटावा और फतेहपुर में की जाती हैं, परन्तु इसका सबसे अधिक क्षेत्र प्रतापगढ़ जिले मे पाया जाता हैं। उत्तर प्रदेश में लगभग 15,750 हे0 क्षेत्र में आंवले के बाग हैं। जिनका कुल उत्पादन लगभग 83,000 टन है।

जलवायु एवं भूमिः आंवले की खेती सूखी तथा नम दोनो प्रकार की जलवायु में की जा सकती है। गर्म हवा तथा पाले से आंवला के पौधे पर विशेष प्रभाव नही पडता है। इसकी खेती समुद्र तल से 1200 मीटर की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक की जा सकती है।

आवंला विभिन्न प्रकार कर मिट्टि्यों में लगाया जा सकता है, लेकिन पौधे की अच्छी वृद्वि एवं उत्पादन के लिए बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी0एच0 मान 6.5 से 8.0 के बीच एवं गहराई कम से कम 2 मीटर हो उपयुक्त होती है।

प्रजातियां

1. बनारसी – इस किस्म के पौधे सीधे बढ़ने वालें होतें हैं, तथा डालियां नीचे की ओर झुकी हुई होतीं हैं। फलों का आकार मध्यम से लेकर बड़ा होता है। फल का औसत वजन 40 से 50 ग्राम तक होता है। प्रारम्भ में फलों का रंग हल्का हरा होता है, जो बाद में सफेद हरे रंग में बदल जाता है।
2. फ्रांसिस – इस प्रजाति को ''हाथीझूल'' के नाम से भी जानतें हैं। इस किस्म के पौधे बनारसी की तरह ऊपर की ओर बढने वाले होतें हैं तथा डालियां नीचे की ओर झुकी हुई होतीं हैं। इसके फल बडे (50 से 60 ग्राम) व गोल होतें हैं। फल हल्के रंग के होतें हैं। इस किस्म में नेक्रोसिस का प्रभाव अधिक देखा गया है।
3. चकइया – इस किस्म के पेड की डालियां किनारे की तरफ अधिक बढ़ती है। जिससे पौधे में फैलाव अधिक होता है। किन्तु फलों का आकार छोटा (25 से 30 ग्राम तक) होता है। इस किस्म में नक्रोसिस रोग का प्रभाव कम होता है। यह देर से पकने वाली किस्म है।
4. एन.ए.–4 (कंचन) – इस किस्म का चुनाव बनारसी बीजू पौधे से किया गया है। इसके फल मध्यम से बड़े आकार के 40 से 50 ग्राम के होतें हैं।

*सह प्राध्यापक) फल विज्ञान विभाग) उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, **वरिष्ठ वैज्ञानिक, प्रसार निदेशालय,
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या

छिलका चिकना हल्का पीला लाल धब्बे लिये हुए होता है। यह किस्म नियमित फल देने वाली है।

5. एन.ए.–5 (कृष्णा) – इस किस्म का चुनाव चकइया किस्म के बीजू पौधे से किया गया है। इस किस्म के पेड की डालियां किनारे की तरफ फैलतीं हैं। यह अधिक फल देने वाली किस्म है। फल छोटे से मध्यम आकार (30 से 34 ग्राम तक) के चपटे लम्बे होतें हैं। छिलका चिकना एवं हल्का पीला होता है। यह किस्म अचार के लिये अच्छी होती है।
6. एन.ए.–7 (अमृत) – इस किस्म के फलों का आकार मध्यम से बडा होता है तथा यह किस्म प्रत्येक वर्ष पर्याप्त फल देती है। पौधे ऊपर की ओर बढ़ने वाले होतें हैं। यह किस्म नेक्रोसिस रोग से मुक्त है।
7. एन.ए.–9 (नीलम) – यह किस्म बनारसी किस्म से चयनित की गयी है तथा कैन्डी बनाने के लिये उपयुक्त है।
8. अन्य विकसित किस्मों में जी.ए.–1 आंवले की किस्म गुजरात क्षेत्र के लिए

उपयुक्त पाई गयी है। जबकि बलवंत किस्म आगरा के लिए उचित है।

फलन की समस्याः आवंला के पौधों में दो प्रकार के फूल आतें हैं। नर और मादा, नर फूल वाली शाखाएं फल नही देतीं है। अतः उसको काट देना चाहिए और शांख (Scion) के लिए नर भाग वाली शाखाओं का प्रयोग नही करना चाहिए। आंवले में फल कम लगने का मुख्य कारण नर और मादा फूल के उच्च लिंगानुपात के कारण होता है। साथ ही इसमे स्वानिश्चेतता के कारण भी कम फल लगतें हैं।

पादप प्रर्वधन

आवंले के पौधे बीजू एवं वानस्पतिक दोनो विधियों द्वारा तैयार किये जा सकतें हैं। किन्तु बीज द्वारा तैयार पौधे अच्छी गुणवत्ता वाले नहीं होते हैं तथा देर से फलतें हैं। जबकि वानस्पतिक विधि द्वारा तैयार पौधे अच्छी गुणवत्ता के साथ–2 जल्दी से फल देने लगतें हैं।

वानस्पतिक पौधें इनार्चिंग तथा कालिकायन विधि द्वारा तैयार किये जा सकतें है। इनमें कालिकायन विधि, इनार्चिंग विधि के अपेक्षाकृत अच्छी एवं सस्ती होती हैं। कालिकायन विधि में पैच तथा शील्ड दोनो विधियों से पौधे सरलता से तैयार हो जातें हैं।

पौध रोपण

आवंले का बाग लगाने के लिये सर्वप्रथम हल्की भूमि में 6 गुणा 6 मी. व मध्यम भूमि में 8 गुणा 8 मी. की दूरी पर 60 ग 60 ग 60 सेमी. आकार के गडढे, पौधे लगाने के एक से डेढ माह पहले खोद लेना चाहिए। हल्की भूमि में गडढे का आकार 1 गुणा 1 गुणा 1 मीटर रखा जा सकता है। गडढा खोदते समय ऊपर की आधी मिटटी एक तरफ तथा नीचे की मिटटी दूसरी तरफ रखनी चाहिए, ऊपर की मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है। पौधे लगाने के 15 से 20 दिन पूर्व ही मिटटी में 30 किलो गोबर खाद, 500 ग्राम सुपर फास्फेट, 250 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश तथा 100 ग्राम कार्बोरिल पाउडर मिलाकर भर देना चाहिये। गड्ढों में पौधे जून–जुलाई में पानी गिरने के बाद लगा देना चाहिये।

खाद एवं उर्वरक

आवंले के सफल उत्पादन के लिए निम्नलिखित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग प्रति पौधा करना चाहिये।

खाद एवं उर्वरक देने का समय

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा को तीन बराबर भागों में जून–जुलाई, सितम्बर–अक्टूबर एवं अप्रैल–मई में फल लगने के बाद देना चाहिये। यदि खेत में नमी न हो तो खाद एवं उर्वरक देने के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिये।

देखभाल

पौध लगाने के कुछ दिनों बाद पौधों की पत्तियां गिर जाती हैं। जिससे उन्हे मरा हुआ नही समझ लेना चाहिये। कुछ समय पश्चात उनमें नई पत्तियां निकल आती हैं। नवीन रोपित पौधों की देखभाल विशेष महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि कलमी पौधों की मृत्यु संख्या अधिक होती है।

पौधे की उम्र (वर्शों में)	गोबर खाद की मात्रा (किग्रा.)	नत्रजन (ग्राम)	सल्फर (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)	खाद देने की तने से दूरी (सेमी.)
1	10	100	50	75	5–10
2	20	200	100	150	10–20
3	30	300	150	225	20–30
4	40	400	200	300	30–40
5	50	500	250	375	40–50
6	60	600	300	450	50–60
7	70	700	350	425	60–90
8	80	800	400	600	60–100
9	90	900	450	675	80–110
10 या उससे अधिक	100	1000	500	750	100–250

सिंचाई

आवंले के पौधों की अच्छी बढवार के लिये जाडों में 15 से 20 दिनों के अन्तर से तथा गर्मियों में 7 से 10 दिन के अन्तर से पानी देना चाहिए लेकिन फलने वाले पेड़ों को अप्रैल से जून तक 7 से 10 दिन के अन्तर से सिंचाई करने से फल बढतें हैं तथा अक्टूबर से दिसम्बर तक 20 दिन के अन्तर से सिंचाई करने से फलों का आकार एवं गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव पडता है।

कटाई–छटाई

आवंला के पौधों को विशेष कटाई छटाई की आवश्यकता नही होती है, लेकिन प्रारम्भ के दो या तीन वर्षों तक पौधों का ढांचा तैयार करने के लिये समय–2 आवश्यक शाखाओं एवं मूलवृन्त से निकली शाखाओं को निकालते रहना चाहिये।

फूलने का समय

आवंले में फूल मार्च–अप्रैल के महीने में आतें हैं। फल लगने के बाद पौधे प्रसुप्ता अवस्था में रहतें हैं और जून–जुलाई से बढना प्रारम्भ करते हैं। आंवला में नर और मादा दो प्रकार के फूल आतें हैं, जोकि फलन को प्रभावित करतें हैं।

फूलने का समय

आवंले में फूल मार्च से अप्रैल के महीने में आते हैं। फल लगने के बाद प्रसुप्ता अवस्था में रहती है और जून–जुलाई से बढना प्रारम्भ करतें हैं। आवंला में नर और मादा दो प्रकार के फूल आतें हैं। कभी–2 अलग–2 शाखाओं पर नर और मादा फूलों का विकास होता है जोकि फलन को प्रभावित करतें हैं।

कीट एवं रोग नियंत्रण :– आवंला में कीडे एवं बीमारियों के कारण विशेष हानि नही होती है पर कुछ रोग एवं बीमारियों के कारण उपज में कमी तथा फलों का रंग रूप खराब हो जाता है।

फलों की तुडाई एवं पैदावार

बीजू आंवले के पेड उगाने के 6वें या 7वें वर्ष थोडे फल आने प्रारम्भ हो जातें हैं। जबकि वानस्पतिक विधि यानि चश्मा विधि से तैयार पौधे 3 से 4 वर्ष में पकने लगतें हैं। अन्य वृक्षों की अपेक्षाकृत आंवले की वृद्वि धीरे–धीरें होती है। फूल अप्रैल में आतें हैं और फल नवम्बर में आतें हैं। प्रत्येक पेड से 4–5 कुन्तल फल प्राप्त कर सकतें हैं।

भंडारण–वितरण एवं उपभोग

साधारण तापमान पर आवंला के फलों को 6 से 9 दिन तक भंडारित किया जा सकता है। इस अवधि में विटामिन 'सी' की मात्रा मे सर्वाधिक कमी बनारसी किस्मों में होती है। जबकि कंचन किस्म में सबसे कम पाई गयी।

आवंला का औषधीय महत्व–

आंवला के विभिन्न भागों में विशेष औषधीय गुण होतें हैं। आवंला, त्रिदोष–वात, पित्त, कफ नाशक होता है। यह शरीर की त्वचा, सिर के बाल, नेत्रो की ज्योति, मुंह के दांत, मसूढे, कब्ज और पेट के पाचन तंत्र के लिये अत्यन्त गुणकारी है। यह विटामिन सी, प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस, रेशा, खाद्य अम्ल और लौह तत्व से भरपूर होता है।

विषाक्त पौधों की विषाक्तता पशुओं में प्रभाव, उपचार एवं बचाव के उपाय

विद्या सागर* एवं राम जीत**

विपरीत मौसम जैसे सूखा, बाढ़ जैसी बिभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का सामना हमारे देश को लगभग प्रतिवर्ष करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पशुओं के चारे–दानें की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस परिस्थिति में मुख्य रूप से चरनें वाले रोमान्थी पशु जैसे गाय, भैस, भेड़ व बकरी जो स्वभाव से अविवेकी आहारी होते है तथ भूख लगने पर व मुख्यतः खाद्य पदार्थो के अभाव में ये पशु विषाक्त पौधों का सेवन भी कर लेते है। इन पौधों में मौजूद विषाक्त अवयव पशुओं में विषाक्तता का कारण बनते है। पशुओं में विषाक्तता की अवधि कुछ क्षणों से लेकर कई सप्ताह तक हो सकती है। मुख्यतया विशक्तता की अवधि इस बात पर निर्भर करती है कि पशु के शरीर में विश की कितनी मात्रा उपस्थित है, उसका स्वास्थ्य कैसा है व पशु की नश्ल क्या है। एक विषाक्त पौधा वह है जिसको सामान्य अवस्था में या चारे के आभाव के समय या आत्याधिक भूख लगने पर खाने से पशु के स्वास्थ पर दुष्प्रभाव पड़ता है तथा कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। प्रमुख विषाक्त पौधों का विवरण निम्न है जो प्रायः पशुओं में विशक्तता करते है।

1.सायनायड युक्त पौधें की विषाक्तता–

यह वह पौधे है जिनमें हाइड्रोसायनिक अम्ल अथवा सायनोजैनिक ग्लाइकोसाइड होते है। भारतवर्ष में पशुओं में साइनाइड विषाक्तता का प्रमुख श्रोत सारघम अथवा ज्वार या चरी है। बढ़वार की कम अवस्था में अथवा सूखे की स्थिति में इन पौधों से साइनायड की मात्रा अधिक हो जाती है इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन युक्त खरपतवारनाशकों व खादों का प्रयोग करने से भी चरी में साइनायड की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त बकरियों व भेड़ों में यह विषाक्तता कीकर (एकेसिया ल्यूकोफोलिया) की कोपलों को खाने से भी हो जाती है। इन चारों में उपस्थित हाइड्रो सायनिक अम्ल साइटोक्रोम आक्सीड्रेज नामक एंजाइम द्वारा रक्त की ऑक्सीजन के उपयोग को रोक देता है जो पशु की मृत्यु का कारण बनता है।

विषाक्तता के लक्षणः

इस विषाक्तता में पशु अत्याधिक उत्तेजित हो जाता है लड़खड़ाने लगता है, सांस लेने में कठिनाई होती है। ऑखों से पानी गिरता है तथा अत्याधिक लार भी आती है। ऑखों की पुतलियां ठण्डी हो जाती है तथा श्लेश्मा झिल्लियॉ ईट की भॉति लाल हो जाती है। अगर उपचार न किया जाये तो पशु की मृत्यु 10 से 30 मिनट में हो जाती है।

रोकथाम व उपचारः

साइनायड विषाक्तता से पशु का उपचार अत्यधिक शीघ्रता से किया जाना चाहिए। इसके प्रतिकारक के रूप में सोडियम थायोसल्फेट 0.5–1 ग्राम प्रति किलो शरीर भार की दर से 25 प्रतिशत पानी के घोल में तथा सोडियम नाईट्राइट 15–25 मि0ग्रा0 प्रति किलो शरीर भार की दर से 1 प्रतिशत पानी के घोल में धीरे–धीरे नस में देना चाहिए। इसकी रोकथाम हेतु पशु को 3–4 लीटर सिरका 10–15 लीटर ठण्डे पानी में मिलाकर पिलाने से विषाक्तता का प्रभाव काफी कम हो जाता हैं चिकित्सा पशु चिकित्सक की देखरेख में ही की जानी चाहिए।

2. आरण्डी के बीजोंकी विषाक्तता–

आरण्डी के बीजों के सेवन से ज्यादा विषाक्तता होती है। अरण्डी की खली से भी विषाक्तता हो जाती है, जिसमें रिसिन नामक जहरीला पदार्थ मौजूद रहता है, जो शरीर की कोशिकाओं में राइबोसोम को खंडित कर देता है इसके अतिरिक्त रसिन पशुओं की ऑतो की ऊपरी सतह को क्षति भी पहुॅचाता है। घोड़े रिसिन की विषाक्तता से ज्यादा प्रभावित होते है।

विषाक्तता के लक्षण

अरण्डी के सेवन के कुछ समय बाद ही लक्षण आने लगते हैं। पशुओं में पेट दर्द छटपटाना, दस्त आना प्रमुख है। पशुओं की मृत्यु प्रायः अत्यधिक दस्त व पेचिस, जो खूनी भी हो सकती है, के कारण होती है।

उपचार व बचाव

आंतों में रिसिन विष के प्रभाव को कम करने के लिये अत्यधिक पानी उदरनलिका के माध्यम से देना चाहिए तथा यदि संभव हो तो पशु को उल्टी भी करायी जा सकती है। चिकित्सा प्रायः लक्षणों के आधार पर ही की जाती है तथा डेक्सट्रोज सेलाइन, विटामिन तथा दर्द निवारक औशधियां आवश्यकता के अनुसार चिकित्सक की देखरेख में देना चाहिए।

3.लेंन्टाना पौधे की विषाक्तता–

यह सबसे अधिक विषाक्ता खरपतवारों में से एक है। यह एक झाड़ीदार पौधा होता है जिस पर चौड़ी पत्तियों के साथ–साथ छोटे–छोटे लाल गुलाबी या पीले

*सह प्राध्यापक/वि.व.वि. (पशु विज्ञान) एवं **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृशि विज्ञान केन्द्र,पांती, अम्बेडकर नगर पो0– मंशापुर–224168,उ0प्र0

रंग के फूल आते है। लेंटाना अन्य चारों की वृद्वि को भी रोकता है। इसकी पत्तियों में लेंटीडीन नामक यकृत विष होता है, जो यकृत की कोशिकाओं को भारी नुकसान पहुंचाता है तथा बिलिसिबिन का स्तर काफी घट जाता है तथा पशु पीलिया से ग्रसित हो जाता है। इसके अतिरिक्त यकृत में फाइलोएरिथ्रिन का स्तर भी बढ जाता है तथा पशुओं में फोटोसेसिटाइजेशन के लक्षण आ जाते है।

विषाक्तता के लक्षण–

सामान्यतया पशु लेंटाना को इसके तीखे स्वाद के कारण खाना पसन्द नही करते परन्तु चारे के अभाव में विशेशकर बकरिया इसको चर लेती है जिसके कारण से विषाक्तता के लक्षण प्रकट होने लगते है। पशु जुगाली करना बन्द कर देता है, चारा नहीं खाता है, कब्ज हो जाता है व पीलिया के लक्षण आने लगते हैं, ऑखों की पुतलिया सूज जाती है, तथा थूथन कान व शरीर के अन्य हिस्सों की खाल फटने लगती है।

उपचार व बचाव–

इसका विशेष उपचार नहीं है तथा मुख्य रूप से लक्षणों के आधार पर ही चिकित्सा की जाती है। पशुओं को डेक्स्ट्रोज सलाइन देते है तथा यकृतीय विकारों की चिकित्सा की जाती है। पशुओं में विश के अवशेशण को रोकने हेतु एक्टीवेटेड चारकोल 4–5 ग्राम प्रति किलो शरीर भार की दर से 15–20 लीटर पानी में घोलकर बड़े पशुओं में देते है। बकरियों को 400–500 ग्राम एक्टीवेटेड चारकोल 3–4 लीटर पानी में घोलकर देना चाहिए।

4.आर्जीमोन पौधे की विषाक्तता–

यह भरभाड़ या बाहयादुंदी अथवा कटीली के नाम से भी जाना जाता है इसकी पत्तियां चौड़ी कांटेदार तथा पीले फूल आते हैं और इसके बीज राई क तरह से होते है। इस पौध के तेल में सेंगनेरीन नामक विश पाया जाता है, जो मनुश्यों व पशुओं में ड्रप्सी नामक बीमारी उत्पन्न करता है।

विषाक्तता के लक्षणः

यह विषाक्त पौधे के खाने से पशुओं के बाहरी अंगों जैसे नाक, कान, खुरों आदि की किनारे सूज जाते है। पाचन सम्बन्धी विकार पैदा हो जाते है तथा मनुश्यों आंखो की मोतियाबिन्द व ड्राप्सी नामक बीमारी हो जाती है।

उपचार व रोकथाम

केवल लक्षाणिक उपचार ही उपलब्ध है तथा इसकी रोकथाम हेतु इस खरपतवार को खेतों से शुरू में ही उखाड़कर फेंक देना चाहिए।

5.ब्रेकन फर्न पौधे की विषाक्तता–

यह पौधे प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों, नदी व नालों के किनारों पर बहुतायत में होता है इसकी पत्तियॉ पतली कटावदार होती है तथा छुई–मुई के पौधों की पत्ती की तरह होती है।चारे के आभाव में पशु इसे खा लेते है। इसमें थाइमिनेज नामक जो विश होता है जो पशुओं में विटामिन बी, की कमी कर देता है, इसके अतिरिक्त इसमें विद्यमान टेकुलासाइड रोमंथी पशुओं में विषाक्तता पैदा करता है।

विषाक्तता के लक्षण–

पशुओं में भूख में कमी आ जाती है तथा ऑख व नाक से पानी आने लगता है गले में सूजन आ जाती है जिससे सांस लेने में कठिनाई होती है। पशु जुगाली करना बन्द कर देता है तथा शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। नथुने तथा थूथन सूख जाते है। कुछ समय उपरान्त गोबर में खून आने लगता है तथा पेशाब में भी खून आने लगता है तथा पशुओं में मृत्यु से पहले शरीर तापमान काफी बढ़ जाता है तथा पशु खून त्यागना भी बन्द कर देता है।

उपचार व बचाव–

पशु को फर्न युक्त चारा नहीं खाने देना चाहिए। रक्त की कमी में दूसरे उसी जाति के पशु का खून भी दिया जा सकता है तथा इसके साथ–साथ लाक्षणिक उपचार के साथ विटामिन बी, व विटामिन के युक्त औषधि दी जाती है।

6.पार्थेनियम पौधे की विषाक्तता–

यह एक खरपतवार पार्थेनियम हिस्टरोफोरस के खाने से गाय, भैस, बैल व बकरी आदि में होती है। इसका पौधा 2–3 मीटर लम्बा तथा पतली–लम्बी पत्तियॉ होती है तथा इस पर छोटे–छोटे सफेद गांठदार फूल खिलते है जो सूखकर चारों तरफ फैल जाते है। इस पौधे में पार्थेनिन नामक जहर होता है। पशुओं में इस पौधे को लगातार 6–7 दिन चरने पर विषाक्तता के लक्षण आ जाते है।

विषाक्तता के लक्षण–

पशु की त्वचा पर छाले पड़ जाते है उससे पहले पशु खूब खुजलाता है। ऑखों की पलकों पर सूजन आ जाती है तथा पशु खूब दमें की तरह खांसता है। बछड़ों में वृद्वि कम हो जाती है तथा दुधारू पशुओं में दूध की मात्रा गिर जाती है।

उपचार व बचाव–

उपचार लाक्षणिक ही होता है तथा त्वचा के छालों हेतु उपर्युक्त एण्टीसेप्टिक क्रीम लगानी चाहिए। इसके अतिरिक्त लिवर टॉनिक पशुओं को दिये जाते है तथा एलर्जी का उपचार किया जाता है।

करेला उत्पान की अद्यतन प्रौद्योगिकी

प्रमोद कुमार सिंह* एवं अंकिता गौतम**

करेला की खेती भारत वर्ष में खरीफ और जायद दोनों ऋतुओं में समान रूप से की जाती है। करेले के कच्चे फलों का रस मधुमेह (डाइबिटीज) के लिए भी बहुत उपयोगी है और उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिए रामबाण है। इसमें उपस्थित कड़ुवाहट (मोमोर्डसीन) मनुष्य के खून को साफ करने में काफी मदद करता है।

उन्नतशील प्रजातियाँ

पूसा दो मौसमी– नाम के अनुसार यह किस्म दोनों मौसम (खरीफ व जायद) में बोयी जाती है। फल बुआई के लगभग 55 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। फल हरे, मध्यम मोटे तथा 15 से0मी0 लम्बे होते हैं। प्रत्येक फल का वजन 120 ग्राम होता है। इस किस्म की औसत उपज 100 कु0/हे0 होती हैं।

पूसा विशेषः– इसके फल हरे, पतले, मध्यम आकार के तथा 20 सेमी0 लम्बे होते हैं। औसतन एक फल का वजन 115 ग्राम होता है। इसकी उपज 115–130 कु0/हे0 होती हैं।

अर्का हरित– इस प्रजाति के फल चमकीले हरे, आकर्षक, चिकने, अधिक गूदेदार तथा मोटे छिलके वाले होते हैं। फलों की पहली तुड़ाई बुवाई के 65 दिन बाद की जा सकती है। फल में बीज कम तथा कड़वापन भी कम होता है। फल की लम्बाई 15 सेमी0 तथा वजन 90 ग्राम होता है। इसकी उपज 130 कु0/हे0 होती हैं।

वी0के0 1(प्रिया)–इसके फल 40 सेन्टीमीटर तक लम्बे तथा मोटे छिलके वाले होते हैं। बुआई के 60 दिन बाद फल तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। प्रत्येक फल का वजन औसतन 120 ग्राम होता है। इसकी औसत उपज 140 कु0/हे0 होती हैं।

पंत करेला– 1 फल मोटे, 15 सेन्टीमीटर लम्बे, हरे तथा प्रारम्भ में पतले होते है। इसके फलों की पहली तुड़ाई बुवाई 55 दिनों बाद की जा सकती है। औसत उपज क्षमता 150 कु0/हे0 होती है। यह जाति पहाड़ों पर उगाने के लिए उपयुक्त हैं।

कल्याणपुर बाराहमासी– यह प्रजाति फल मक्खी के लिए प्रतिरोधी है तथा दोनों मौसमों में उगायी जा सकती हैं।

पूसा हाइब्रिड–1 फल हरे, मध्यम आकार के औसतन एक फल का वजन 100 ग्राम हो होता है। फूल बुवाई के 55–60 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाते है। इसकी उपज 150–170 कुन्टल/हेक्टेयर होती है।

काशी हरितः–फल चमकीले हरे, चिकने, गूदेदार। एक फल का वजन 80–100 ग्राम होता है। पहली तुड़ाई 50 दिन बाद व मचान पर खेती करने से लगभग 300 कु0/हेक्टेयर उपज मिल जाती है।

पूसा औषधिः– हल्के हरे, परचम लम्बाई वाले तथा औसत फल भार 85 ग्राम परिपक्वता अवधि 48–52 दिन, औसत उपज 198 कुन्टल/हे0।

पूसा हाइब्रिड–1:– फल मध्यम लम्बाई का अधिक उपज पहली तुड़ाई 55–60 दिनों में औसत उपज 200 कुन्टल/हे0।

पूसा हाइब्रिड–2 फल गहरा हरा मध्यम लम्बाई का, फल का औसत वजन 85–90 ग्राम पहली तुड़ाई 52 दिनों में औसत उपज 180 कुन्टल/हे0

भूमि की तैयारी

करैला के लिए बलुई दोमट या दोमट भूमि जिसमें जल निकास का उत्तम प्रबन्ध हो उपयुक्त मानी जाती है। मृदा की पी0एच0 मान 6 से 7 अच्छा माना जाता है। खेत की 3–4 जुताई करके नाली या थाले बना लेते है, जिसमें बीज की बुवाई करते है। बीज की बुवाई खेत में नमी की पर्याप्त मात्र रहने पर ही करनी चाहिए। जिसे बीजों का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी प्रकार हो सकें।

बीज की दर एवं बुआई

एक हेक्टेयर खेत की बुआई के लिए 5–6 किलोग्राम प्रति हेक्टर की आवश्यकता होती है, अच्छी प्रकार से तैयार किये गये खेत में 2 से 2.5 मीटर की दूरी पर 40–50 सेन्टीमीटर चौड़ी नाली बनाकर नालियों के दोनो किनारों (मेड़ो) पर 45 से 60 सेन्टीमीटर की दूरी पर बुआई करते है। एक स्थान पर दो से तीन बीज, 3–5 सेन्टीमीटर गहराई होनी चाहिए।

बुआई का समय–

इसकी बुआई ग्रीष्म ऋतु (जायद) में 15 फरवरी से 15 मार्च तक तथा वर्षा ऋतु (खरीफ) के लिए 15 जून से 15 जुलाई तक करते है। पहाड़ों पर बुआई अप्रैल के महीने में की जाती है।

बुआई की दूरी

करेले की बुआई जहाँ तक हो सके मेड़ों पर करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 1.5 से 2.5 मीटर

(शेष पृष्ठ 20 पर)

*एस.एम.एस.(उद्यान) कृषि विज्ञान केन्द, बहराईच, **शोध छात्रा, डा0 भीम राव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सब्जियों को कीट और रोगों से कैसे बचाए

शैलेन्द्र सिंह एवं एस.के. सिंह

कद्दूवर्गीय सब्जियों की उपलब्धता साल में लगभग 8–10 महीने रहती है। इनका उपयोग सलाद (खीरा, ककड़ी) पकाकर, सब्जी के रुप में (लौकी, तोरई, करेला, काशीफल, परवल, छप्पन कद्दू), मीठे फल के रूप में (तरबूज, खरबूजा), मिठाई बनाने में (पेठा, परवल, लौकी) और आचार बनाने में (करेला) का प्रयोग किया जाता है। इन सब्जियों में कई प्रकार के कीट लगते हैं जिनका एकीकृत प्रबन्धन निम्न प्रकार है–

एकीकृत कीट प्रबन्धन :

1. कद्दू का लाल भृंग :

यह कीट तेज चमकीला नारंगी रंग का होता है। यह खीरा वर्गीय सब्जियों में फरवरी से अक्टूबर तक क्षति पहुँचाता है। भृंग एवं प्रौढ़ दोनों पत्तियों को खा कर छलनी कर देते हैं। भृंग जड़ों, तने व जमीन से सटे फलों को क्षति पहुंचाती है। आम तौर पर इसका प्रौढ़ पौधों की छोटी पत्तियों को ज्यादा पसन्द करते हैं। अंकुरण के पश्चात् बीज पत्रक से लेकर 4–5 पत्ती अवस्था की पौध इस कीट से बहुत प्रभावित होती है।

प्रबन्धन :

फलों की अन्तिम तुड़ाई के बाद खेत की जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए जिससे अण्डे एवं ग्रव सूर्य के प्रकाश एवं चिड़ियों द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। लौकी एवं कद्दू की बोआई नवम्बर तक कर देनी चाहिए। मार्च–अप्रैल में खड़ी फसल में पौधों की जड़ों के पास गुड़ाई करके अण्डों को नष्ट किया जा सकता है। पत्तियों को इक्ट्ठा करके जमीन में दबा देना चाहिए। रासायनिक नियन्त्रण के लिए क्लोरोपायरीफास 20 ई0सी0 1.0 लीटर को 700 से 800 पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

2. फल की मक्खी :

इस मक्खी का रंग लाल–भूरा होता है। इसके सिर पर काले तथा सफेद धब्बे पाये जाते हैं। करैला, टिंडा, तरोई, लौकी खरबूजा, तरबूजा आदि सब्जियों को यह मक्खी क्षति पहुंचाती है इस कीट का मैगट फलों के गूदे को खाते हैं। जिससे क्षति ग्रस्त फल छोटे, टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। नमी युक्त गर्म मौसम इसके प्रकोप के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इस कीट से ग्रसित फल सम्पूर्ण रूप से सड़ जाता है।

प्रबन्धन :

वर्ष भर में दो बार खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करनी चाहिए। क्षतिग्रस्त फलों को एकत्र करके चूना पड़े गड्डों में या मिट्टी के तेल पड़े पानी में डालने से मैगेट मर जाता है। फलों पर कागज या कपड़ों की थैली चढ़ा देने से कीड़ों को फलों में अण्डे देने से रोका जा सकता है। रासायनिक नियन्त्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.5 से 1.0 मि. ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करने से इस कीट से फसल को बचाया जा सकता है।

3. ब्लीस्टर बिटिल :

यह एक आर्कषक चमकीले रंग तथा बड़े आकार का कीट है। इसके पंखों के ऊपर तीन काले एवं तीन पीले रंग की पट्टियाँ पायी जाती है। यह कीट पुष्प कलियों तथा फूलों को खाकर नष्ट कर देता है। जिससे उत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ता है।

प्रबन्धन :

यदि खेत में इस कीट की संख्या कम है तो हाथ से पकड़ कर नष्ट कर देते हैं। अगर इसकी संख्या ज्यादा है तो रासायनिक नियंत्रण के लिए क्न्यूनालफॉस 25ः प्रतिशत ई.सी.की 1.5 से 2.0 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी के साथ मिला कर छिड़काव करने से इस कीट से निजात पा सकते हैं।

4. चेपा :

यह कीट छोटे आकार के काले एवं हरे रंग के होते हैं। यह कोमल पत्तियों, पुष्पकलियों का रस चूसते हैं। जिससे पत्तियाँ तथा पुष्प पहले पीले पड़ते तथा बाद में सूख कर जमीन में गिर जाते हैं।

प्रबन्धन :

इस कीट के जैविक नियन्त्रण के लिए नीम तेल 2.0 से 3.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर 12–15 दिन के अन्तराल पर कीट आने से पहले छिड़कना चाहिए जिससे कीट फसल पर नहीं आयेंगा। यदि कीट आ गया है, तो रासायनिक नियन्त्रण में इमिडाक्लोप्रिड

कृषि विज्ञान केंद्र, बेलीपार, गोरखपुर

17.8 एस.एल.की 0.5 से 1.0 मिली दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

5. लाल मकड़ी :

यह गर्मी के मौसम में खरबूजे एवं खीरे में अधिकतर आक्रमण करती है। यह बहुत छोटा लाल रंग का कीट है तथा पत्तियों की निचली सतह पर अधिकतर मिलते हैं।

प्रबन्धन :

इस कीट का नियन्त्रण चेपा कीट की भांति है।

6. पत्ती खाने वाली इल्ली :

यह कीट कद्दूकुल की सब्जियों के लिए बहुत हानिकारक है यह पत्तियों को खाकर बिल्कुल छलनी कर देती है। इसकी जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ती हैं। जैसे ही 2–3 इल्ली प्रति पौधा पर दिखे तुरन्त इसका नियन्त्रण करना चाहिए।

प्रबन्धन :

इस कीट के नियन्त्रण के लिए क्यूनालफॉस 25 प्रतिशत ई.सी. की 1.5 से 2.0 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी के साथ मिला कर छिड़काव करने से इस कीट के नियन्त्रित किया जा सकता है।

7. भिण्डी का तना एवं फल छेदक कीट :

इस कीट की सूँड़ी का रंग सफेद होता है, जिसके उपर काले और भूरे धब्बे पाये जाते है। इसी लिए इसे चित्तीदार सूड़ी कहते हैं। इस कीट की सूँडी मुलायम टहनियों, कलियों, फूलों व फलों में घुसकर क्षति पहुंचाती है। जिससे प्रभावित फल सब्जी योग्य नहीं रहते है वह ग्रसित फल सही आकार नहीं ले पाता है और टेढ़ा हो जाता है। इसकी सूड़ियाँ तने के शीर्ष भाग को नुकसान करती है शीर्ष मुरझा जाता है, जिससे पौधे की बढ़वार रूक जाती है।

प्रबन्धन :

गर्मियों की गहरी जुताई करें तथा फसल चक्र (2–3) का अपनाये। क्षतिग्रस्त फुनगी तथा फलों को सूँड़ी सहित एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए। खेत के पास उगे अन्य पोषक पौधों को नष्ट कर देना चाहिए। खेत में गिरी पत्तियों को खेत से बाहर निकाल कर जमीन में गाढ़ देना चाहिए। पंजाब–7, क्लेमशन स्पाइनलेस, ऐ.ई.–7, एस.पी.किस्में एवं फल छेदक कीट के प्रति सहनशील है। अण्डा परजीवी ट्राइकोग्रामा 50 हजार को फल लगते समय सप्ताहिक अन्तराल पर खेत में छोड़ने से फल बेधक कीट का प्रकोप कम पाया जाता है। फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर 5–6 की दर से खेत में लगायें। रसायनिक नियन्त्रण के लिए स्पाइनोसेड 45 ई.सी. की 0.5 मि.लीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

8. जैसिड या हरा फुदका :

यह हरे रंग के कीट होते हैं, जिनके पीठ के पिछले भाग पर काले धब्बे पाये जाते हैं। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ दोनों पत्तियों की निचली सतह पर रह कर रस चूसते हैं। जिससे पत्तियाँ कपनुमा बन जाती है। और धीरे–धीरे सूख जाती है।

प्रबन्धन :

बीज को इमिडाक्लोप्रिड 2.5 ग्राम प्रति किग्राम बीज उपचारित करके बोना चाहिए, मैलाथियान 2.0 से 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.5 से 1.0 मि. लीटर मात्रा प्रति लीटर पानी के साथ मिला कर छिड़काव करें।

9. पीत शिरा मोजैक :

यह रोग विशाणु जनित होता है। इसमें सर्वप्रथम पत्तियों की शिराये एवं शिरिकायें पीली होकर मोटी हो जाती है और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। बाद में पत्तियाँ भी पीली पड़ने लगती है। रोग की उक्त अवस्था में तने और फलों का भी रंग पीला पड़ जाता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। इस रोग के प्रकोप से पौधा एवं फलियाँ दोनों छोटे रह जाते हैं।

प्रबन्धन :

बीज को इमिडाक्लोप्रिड रसायन की 2.5 ग्राम मात्रा से प्रति किग्राम बीज उपचारित करके बोना चाहिए। रोग रोधी प्रजातियों का चयन करें। फसल चक्र 2–3 साल का अपनाये रसायनिक नियन्त्रण के लिए थायमेथाक्जाम 25 प्रतिशत डब्लू.जी. की 40 ग्राम दवा 150–200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से फसल पर छिड़काव करें।

प्रबन्धन :

इस रोग के नियन्त्रण के लिए बीज को शोधित करके बोना चाहिए। शोधित करने के लिए थायोफिनेट मिथाइल 70 डब्ल्यू.पी.की 2.0 ग्राम दवा प्रति किग्राम बीज शोधित करना चाहिए। रोग अगर खेत में आ गया है तो थायोफिनेट मिथाइल 70 डब्ल्यू. पी. की 1.0 ग्राम और कासूगोमाइसिन 3 प्रतिशत प्रतिशत एस एल की 2.5 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन वृद्धि में प्रोबायोटिक का महत्व एवं उपयोग

एस.के. सिंह*, एस. के. तोमर** एवं आर. आर. सिंह**

प्रोबायोटिक (प्राजीवी) एक ग्रीक शब्द है जिसका प्रयोग सर्वप्रथम पारकर नामक वैज्ञानिक ने सन् 1974 ई० में किया। इसका प्रयोग उन सूक्ष्माणुओं और पदार्थों के लिए किया गया जो पाचननलीय सूक्ष्माणुओं का संतुलन बनाए रखने में सहयोगी हैं। बाद में फुल्लर साहिब ने इसकी पुनः व्याख्या एक सजीव सूक्ष्माणु खाद्य योगज (माइक्रोबियल फीड एडिटिव) के रूप में की जो पशु की पाचन नली में सूक्ष्म जीवाणुओं का संतुलन सुधारकर लाभदायक प्रभाव पैदा करते हैं।

जुगाली करने वाले पालतू पशुओं के दैनिक आहार में रेशेदार खाद्य पदार्थो जैसे भूसा, कडवी और हरे चारे की मात्रा अधिक होती है, परन्तु इन पशुओं में आहार के रेशेदार घटक को पचाने की क्षमता नहीं होती। इसलिए प्रकृति ने इन पशुओं के आहार नाल के अगले भाग को विकसित करके उनमें कई प्रकार के लाभकारी सूक्ष्माणुओं के निवास और वर्धन के लिए उपयुक्त वातावरण का प्रावधान किया है। पशुओं की पाचन नली में पाए जाने वाले सुक्ष्माणु दाने – चारे के रेशों को पचाने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं जिसके परिणामस्वरूप दाने – चारे से वाष्पशील वसा अम्ल बनते हैं और ये अम्ल पशु को उर्जा प्रदान करते हैं। नवजात रोमान्थी पशुओं की पाचन नली लगभग जीवाणुहीन होती है परन्तु जन्म के बाद जब बछड़े बाहर के वातावरण, प्रौढ़ पशु और उनके जूठे आहार के सम्पर्क में आते हैं तो उनकी पाचन नली में जीवाणु प्रवेश करके अपना स्थाई आवास बना लेते हैं। पशुओं की पाचन नली में स्थापित यह जैवाणुविक वातावरण उनकी विभिन्न प्रकार की बीमारियों से रक्षा करके तथा आहार को सुपाच्य खाद्यों में परिवर्तित करके इसकी पौष्टिकता को बढ़ाते हैं। पशु के पूर्ण विकसित रूमेन में सूक्ष्माणुओं का एक जटिल सामुदायिक वातावरण होता है जो रोमान्थी पशुओं द्वारा लिग्निन युक्त सेलुलोजिक (रेशेदार) खाद्यों को पचाने में सहायक होता है। आहार नली में जैवाणविक संरचना के सन्तुलन में किसी भी प्रकार की वाधा पशुओं पर बुरा प्रभाव डालती है तथा इस जैवाणविक संरचना में सुधार से पशुओं की उत्पादकता में सुधार की संभावना रहती है।

सूक्ष्माणुविक खाद्य योगजों (माइक्रोबियल फीड एडिटिव) के प्रकार

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्माणुओं जैसे बैक्टीरिया (लैक्टोबैसिलस, बैक्टरायड्स, ल्यूकोनॉस्टॉक, पेडियोकाकस, स्ट्रेप्टोकाकस) और कवकों (एस्पर्जिलस ओराइजी, सक्रोमाइसिज सेरेविसी, कैन्डिडा पिन्टोलोपसाइ) का सफलतापूर्वक उपयोग सूक्ष्माणविक खाद्य योगजों के रूप में किया गया। भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान के पशु पोषण विभाग में किए गए अनुसंधानों के परिणामों में सैक्रोमाइसिज सेरेविसी और लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस बहुत उपयोगी पाए गए।

लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया

पशुओं की पाचन नली में प्रायः आंत्रीयविषजनी बैक्टीरिया आंत से चिपककर विषकारी पदार्थो का उत्सर्जन करते हैं जो धारक पशु के लिए हानिकारक हो सकते हैं। गाय और भैंस के बछड़ों में प्रायः आंत्रीय बैक्टीरिया के हानिकारक प्रभाव से अतिसार के लक्षण उत्पन्न होते हैं जिसके कारण इस अवधि में मृत्यु और बीमारी की दर बहुत अधिक होती है। जुगाली करने वाले पशुओं के नवजात बछड़ों और अस्वस्थ पशुओं में लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया का उपयोग सिर्फ उत्पादन बढ़ाने के लिए ही नहीं बल्कि उनकी आहार नली के सूक्ष्माणुविक परिवेश को सामान्य बनाने के लिए भी किया जाता है। नवजात बछड़ों के आहार में लैक्टोबैसिलाई से किण्वित दूध पिलाने पर अतिसार की उग्रता में कमी आती है और पशु कम समय में ठीक हो जाते हैं। लैक्टोबैसिलाई पाचन नली में अधिक मात्रा में एसिटिक और लैक्टिक अम्ल का उत्पादन करते हैं जिसके कारण आहार नली के द्रव्य की क्षाराम्ल प्रतिक्रिया (पी एच) घट जाती है। ये कार्बनिक अम्ल आंतों में नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के

*.एस.एम.एस.(पशुपालन), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बेलीपार, गोरखपुर
***अपर निदेशक प्रसार आ. न. दे. कृ. एवं प्रो. वि. वि., कुमारगंज, अयोध्या

लिए हानिकारक होते हैं और इनकी विषाक्तता घटे पी एच पर कई गुना बढ़ जाती है। लैक्टिक अम्ल उत्पादन के कारण ही लैक्टोबैसिलस का एन्टीरोबैक्टीरियम और साल्मोनेल्ला पर विरोधी प्रभाव होता है।

पशुओं में अतिसार के रोगाणुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी के लिए उनका आंत्रभित्ति पर चिपकना अनिवार्य है। इससे आंतों के क्रमाकुंचन द्वारा उनकी निष्कासन दर भी घट जाती है। लैक्टोबैसिलस का प्रोबायोटिक के रूप में होने वाले लगभग सभी परीक्षणों में यह पाया गया है कि आंतों में कालोनी बनाने के लिए इसकी स्पर्धा रोगाणुओं से रहती है और इसमें लैक्टोबैसिलस की क्षमता अधिक होने से ये रोगाणुओं को आहार नाल से बाहर निकाल देते हैं। इसीलिए गाय और भैंस के नवजात बच्चों को लैक्टोबैसिलस खिलाने की राय दी जाती है। लैक्टोबैसिलस की विभिन्न प्रजातियों द्वारा कई प्रकार के प्रतिजीवी प्रभाव वाले तत्व जैसे एसिडोफिलिन, एसिडोलिन, लैक्टोबैसिलिन और लैक्टोडिन इत्यादि उत्पन्न होते हैं जोकि साल्मोनेल्ला, शिगेला, प्रोटियस, क्लेबसिल्ला, आंत्रीय रोगकारी इश्चीरिशिया कोलाई, बैसिलस, स्यूडोमोनास आदि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। लैक्टोबैसिलाई द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन परआक्साइड कम पी एच पर अपनी ज्यादा शक्तिशाली रोगाणुनाशी क्षमता के कारण रोगाणुओं को मारने में आशिक रूप से जिम्मेवार है।

खमीर / यीस्ट

रोमान्थी पशुओं के आहार में खमीर के प्रयोग से आहार नली के पी एच में स्थिरता आने से सेलुलोज पचाने वाले बैक्टीरिया की संख्या बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण बनता है। रूमेन में खमीर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण लक्षण आक्सीजन उपभोग है। दाना – चारा खाने के साथ – साथ जुगाली करने वाले पशु हवा में मिश्रित आक्सीजन भी ग्रहण करते हैं जिसका रूमेनी सूक्ष्माणुओं के क्रिया – कलाप पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि अधिकांश रूमेनी सूक्ष्माणुओं के लिए आक्सीजन हानिकारक है। इस तरह यीस्ट खाने के साथ रूमेन में जाने वाली आक्सीजन का उपभोग करके रूमेनी सूक्ष्माणुओं को आक्सीजन के हानिकारक असर से बचाते हैं।

सैक्रोमाइसिज सेरिवेसी विटामिन और अन्य आवश्यक तत्व प्रदान करके रूमेन के कवक नियोकैलिमैस्टीक्स फ्रांटैलिस के जूस्पोर के अंकुरण और सेलुलोज तोड़ने तथा लैक्टिक अम्ल खाने वाले बैक्टीरिया की संख्या को बढ़ाकर सेलुलोज पचाने की क्षमता बढ़ाते हैं।

पशुओं को प्रोबायोटिक खिलाना

प्रोबायोटिक को कम तापक्रम पर सुखाकर चूर्ण अथवा गोली या आहार में मिलाकर खिलाते हैं। सामान्य दशा में पोष्य माध्यम (निमग्न किण्वन) में सूक्ष्माणुओं का संवर्ध बनाए रखना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रोबायोटिक संवर्ध (ठोस माध्यम किण्वन) से किण्वित खाद्य का उत्पादन एक अच्छा विकल्प है और यह विधि बहुत ही सस्ती तथा सरल और कृषकों द्वारा आसानी से अपनाने योग्य है। किण्वित खाद्य में सूक्ष्माणुओं की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। किण्वित खाद्य में चूंकि सूक्ष्माणु सक्रिय अवस्था में होते हैं इसलिए पशु की पाचन नली में पहुंचते ही अपना प्रभाव डालना शुरू कर देते हैं जबकि चूर्ण या गोली में सूक्ष्माणु निष्क्रिय अवस्था में होते हैं इसलिए पशु की पाचन नली में पहुंचने के बाद सक्रिय होने के लिए थोड़ा समय लेते हैं तथा इनकी संख्या भी धीमी गति से बढ़ती है किण्वित खाद्य में बैक्टीरिया और उनके द्वारा उत्पादित उपापचय पदार्थ दोनों ही होने से वे अधिक प्रभावशाली होते हैं। बिना किसी यंत्र का उपयोग कर अधिक मात्रा में सूक्ष्माणु उत्पादन के लिए ठोस माध्यम किण्वन विधि को आधार मानकर प्रोबायोटिक बनाने हेतु कुछ प्रयोग किए गए ताकि हमारे किसान भाई आसानी से प्रोबायोटिक अपने घर पर बनाकर जानवरों को खिला सकें। गांव में पशु पालकों द्वारा पशुधन उत्पादन में सुधार हेतु प्रोबायोटिक का दैनिक उत्पादन आवश्यक है। इसीलिए पशु पालकों को इसे अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रोबायोटिक उत्पादन की विधि सस्ती और सरल हो। ये सभी गुण ठोस माध्यम किण्वन विधि में उपस्थित हैं। मक्के के दलिया और गेहूं के चोकर को ठोस माध्यम किण्वन विधि से प्रोबायोटिक बनाने के लिए प्रयोग किए गए और यह पाया गया कि इनके साथ किसी अन्य तत्व विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती। चूंकि ये दोनों चीजें पशु आहार में बहुतायत में प्रयोग की जाती हैं अतः इससे पशु पालकों द्वारा प्रोबायोटिक उत्पादन में किसी प्रकार की असुविधा होने की बहुत ही कम संभावना है।

किण्वित खाद्य उत्पादन के लिए सूक्ष्माणु द्वारा ठोस माध्यम किण्वन विधि बहुत अच्छी विधि है। आक्सीजन की उपस्थिति में बढ़ने वाले सूक्ष्माणुओं द्वारा ठोस माध्यम किण्वन की कुछ अपनी सीमाएं हैं जैसे इस माध्यम में आक्सीजन की उपलब्धि हर जगह समान नहीं होती है और उससे कार्बन डाइआक्साइड का निष्कासन भी कम होता है परन्तु इस प्रकार की समस्याएं कुछ विशेष प्रकार के सूक्ष्माणुओं जैसे लैक्टोबैसिलस और खमीर के साथ नहीं है। अन्न के दलिया अथवा चोकर को जल के साथ लगभग 1 : 2 के अनुपात में मिश्रित करने पर एक गीला मिश्रण तैयार हो जाता है। मिश्रण में जल की मात्रा 1 : 2 से बढ़ाकर 1 : 4 का अनुपात करने पर भी उत्पाद के गुणों पर बुरा असर नहीं पड़ता है परन्तु मिश्रण की मात्रा बढ़ जाने से अधिक अथवा बड़े बर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। ठोस और जल का अनुपात 1 : 2 से कम रखने पर मिश्रण प्रायः पूरी तरह गीला नहीं हो पाता है और गर्म तथा शुष्क वातावरण में उसमें जामन डालकर किण्वित करने पर नमी और घट जाने से किण्वन क्रिया अधूरी रहने की संभावना रहती है। इसलिए उचित किण्वन हेतु खाद्य और जल में 1 : 2 का अनुपात बहुत अच्छा पाया गया है। पशुओं को खिलाए जाने वाले दाने में जल मिलाने पर उनमें तथा जल में उपस्थित सूक्ष्माणुओं का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। इस मिश्रण में खमीर अथवा लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया को अधिक तेजी से बढ़ाकर अन्य नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के बढ़वार को रोककर अपनी संख्या बढ़ाने की क्षमता रखनी पड़ती है। सामान्य दशा में खाद्य को गर्म कर अथवा उबाल कर सूक्ष्माणु हीन करने के बाद ही किण्वन हेतु जरूरी सूक्ष्माणुओं का जामन डाला जाता है परन्तु मक्के के दलिया और चोकर को बिना उष्मा उपचार के भी खमीर अथवा लैक्टोबैसिलस से किण्वित करने पर वांछित प्रकार का किण्वित खाद्य योगज प्राप्त किया जा सकता है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन दोनों प्रकार के सूक्ष्माणुओं में हानिकारक सूक्ष्माणुओं की बढ़वार को समाप्त करके अपने को बढ़ाने की क्षमता है। किण्वित खाद्य पदार्थो की अम्लता बढ़ाकर तथा कार्बनिक अम्ल उत्पन्न कर उसमें उपस्थित हानिकारक सूक्ष्माणुओं की बढ़वार को नियंत्रित अथवा समाप्त करने की क्षमता लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया में है। इसी प्रकार यह क्षमता खमीर में भी पाई जाती है जिसके कारण खमीरी खाद्य योगज में भी अवांछित सूक्ष्माणु नहीं पाए जाते हैं। यह संभवतः इसके द्वारा उत्पादित इथेनाल के कारण होता है जोकि नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के लिए प्रतिरोधी है। इसलिए इन सूक्ष्माणुओं द्वारा खाद्यों का वांछित किण्वन करने के लिए किसी प्रकार के पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं है तथा प्रोबायोटिक प्राशन हेतु ठोस माध्यम किण्वन विधि पशु पालक सुगमता पूर्वक अपना सकते हैं।

पशुओं हेतु सूक्ष्माणवी खाद्य योगज (प्रोबायोटिक) का उत्पादन

किण्वित दूध

लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस का खाद्य योगज बनाने के लिए दूध का माध्यम लिया जाता है। दूध को उबालकर सामान्य तापक्रम तक ठंडा करने के बाद उसमें 2 प्रतिशत की दर से लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस का जामन मिश्रित करके लगभग 12 घंटे तक रखने पर किण्वन क्रिया पूरी हो जाती है। अब बच्चों की आवश्यकतानुसार केवल यही किण्वित दूध अथवा इसको दूध के साथ आंशिक मात्रा में खिलाया जा सकता है।

किण्वित ठोस खाद्य (अन्न / चोकर) एवं इसके गुण

मक्के का दलिया अथवा गेहूं का चोकर या दोनों के मिश्रण के 10 कि ० ग्रा ० में 20 लीटर जल अच्छी प्रकार मिश्रित कर उसमें लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस अथवा सैकेरोमाइसिज सेरेवेसी का जामन 2 प्रतिशत की दर से मिश्रित कर अच्छी प्रकार ढककर कमरे के सामान्य तापक्रम पर किण्वित होने के लिए लगभग 24 घंटे तक रखा जाता है। इसके बाद यह किण्वित खाद्य योगज, प्रोबायोटिक पशु प्राशन के लिए तैयार हो जाता है। इस किण्वित खाद्य पदार्थ को अगले दिन के खाद्य को किण्वित करने के लिए जामन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है परन्तु ऐसी परिस्थिति में जामन की मात्रा बढ़ाकर 10 प्रतिशत करनी पड़ती है। दो सप्ताह बाद लैक्टोबैसिलस अथवा खमीर का नया जामन बनाकर इस्तेमाल करना चाहिए। इससे किण्वित खाद्य योगज की गुणवत्ता बनी रहती है। किण्वित खाद्य महक रोचक होती है। किण्वित खाद्य सुनहरे पीले रंग का होता है। इसमें किसी प्रकार के बाहरी कवक का प्रदूषण नहीं होता है।

दलहनी फसलों मे पोषक तत्व प्रबन्धन

के. एम. सिंह एवं आर आर. सिंह

देश मे दलहनी फसलों की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं मे की जाती है। इस तरह इन फसलों की उत्पादकता पर स्थानीय मृदाओं मे उपलब्ध पोषक तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

अखिल भारतीय समन्वित दलहन सुधार परियोजना द्वारा केवल 10–20 कि.ग्रा. नत्रजन दलहनी फसलों के लिए संस्तुत था, यद्यपि फास्फोरस का महत्व पहले से ही ज्ञात है फिर भी इसके लिए सामान्यतः 40–60 कि. ग्रा. फास्फोरस पेन्टाआक्साइड प्रति हेक्टेअर दलहनी फसलों के लिए संस्तुत किया गया है। उपरोक्त वर्णित मात्रा को ध्यान मे रखते हुए नत्रजन एवं फास्फोरस मिश्रित विकसित उर्वरक डाई अमोनिया फास्फेट (18% नत्रजन एवं 46% फास्फोरस) की 100 कि.ग्रा प्रति हेक्टेअर मात्रा दलहनी फसलों के लिए संस्तुत की गयी है।

विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि मृदा मे पोटाश की काफी कमी पायी गयी है। जिसका प्रभाव दलहनी फसलों पर सीधा पड़ने लगा है। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर के प्रक्षेत्र मे मुख्यतः बौनी मटर पर किए गए परीक्षणों एवं जिला फर्रुखाबाद मे यू.एन.डी.पी. द्वारा संचालित प्रदर्शनों मे पोटाश न देने से उपज पर विपरीत प्रभाव देखा गया है। अतः परीक्षण के आधार पर 20–40 कि.ग्रा. पोटाश दलहनी फसलों में देना चाहिए।

गौण तत्वों मे गन्धक एवं सूक्ष्म तत्वों मे जस्ता, बोरान, मौलिब्डेनम इत्यादि बहुत महत्वपूर्ण है। इसके अलावा दलहनी फसलों मे पोषक तत्वों की उपयोगिता बढ़ाने के लिए यह जरुरी है कि इनमे राइजोबियम एवं फास्फोरस घोलक वैक्टिरिया का टीका अवश्य लगाएँ। इनका प्रबन्धन प्रत्येक दलहनी फसल के अनुसार नीचे वर्णित किया जा रहा है–

मूँग एवं उर्द

मूँग एवं उर्द जायद व खरीफ की फसलें हैं। इनके अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु 100 कि.ग्रा. डी. ए. पी., 20–40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेअर देना चाहिए। गन्धक की कमी वाली मृदाओं मे 15–20 कि. ग्रा. गन्धक प्रति हेक्टेअर देना चाहिए। सूक्ष्म तत्वों के लिए ग्रीश्मकालीन मूँगमे 1.2 कि.ग्रा. सोडियम मालिब्डेट से बीज उपचार करने पर 33.5 तकनीक उत्पादन वृद्धि पायी गयी। इनका प्रयोग बुवाई के समय अथवा उसके पहले किया गया। इस प्रकार खरीफ ऋतु मे उगायी जाने वाली उर्द में 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर जिंक सल्फेट के प्रयोग से 20.1 प्रतिशत वृद्धि अंकित हुई।

अरहर

अरहर की खेती विभिन्न राज्यों मे शीघ्र व देर से पकने वाली प्रजातियों के साथ की जाती है। अरहर में 20–40 कि.ग्रा. नत्रजन, 40–60 कि.ग्रा. फास्फोरस व 20–40 कि.ग्रा. पोटाश की प्रति हेक्टेअर मात्रा प्रयोग करने से अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ है। मृदा परीक्षण के आधार पर 15–30 कि.ग्रा. गंधक प्रति हेक्टेअर देने से उत्पादन मे आषातीत वृद्धि हुई है। अरहर की खेती मे सूक्ष्म तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। संकर अरहर तथा शीघ्र पकने वाली प्रजातियों मे जस्ता, बोरान, मौलिब्डेनम का अच्छा प्रभाव पाया गया है। परन्तु सबसे अधिक (15.1 प्रतिशत) उपज वृद्धि 10 कि.ग्रा. बोरेक्स देने से हुई है। देर से पकने वाली अरहर मे सबसे अधिक उत्पादन वृद्धि (18.2 प्रतिशत) 1.0 कि. ग्रा. सोडियम मौलिब्डेट प्रति हेक्टेअर देने से प्राप्त हुई है। दूसरा स्थान 15 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट (16.41 प्रतिशत) का है। बोरेक्स (10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर) तथा लौह (चिलेटेड) 1.0 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर देने से कम उपज वृद्धि (4–6 प्रतिशत) अंकित हुई है।

राजमा

राजमा मैदानी क्षेत्रों के लिए नई फसल है। इसमे नत्रजन स्थिरीकरण की ग्रन्थियां नही होती हैं। फलस्वरुप इसके उत्पादन के लिए 100–120 कि.ग्रा. नत्रजन देने की आवश्यकता होती है। मृदा परीक्षणों के आधार पर 40–50 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20–40 कि. ग्रा. पोटाश की मात्रा देनी चाहिए। यह फसल सिंचित क्षेत्रों की होने की वजह से सघन फसल पद्धति से उगाई जाती है। जिससे ऐसी स्थिति मे मृदा में गौण एवं सूक्ष्म तत्व कम हो जाते हैं। अतः फसल उत्पादन के लिए 20–30 कि.ग्रा. गंधक, 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट व 10 कि.ग्रा. बोरेक्स देना चाहिए।

चना

चना एक बहुत महत्वपूर्ण फसल है। इसका उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है। इसकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रमुख पोषक तत्वों जैसे नत्रजन एवं फास्फोरस के

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौ.वि.वि, कुमारगंज, अयोध्या

लिए 100कि.ग्रा. डी.ए.पी. तथा पोटाश की 20–40 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से मात्रा प्रयोग करनी चाहिए। गौण तत्व गन्धक की 20–30 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेअर प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। सूक्ष्म तत्वों पर अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि जस्ता से 16.4, बोरान से 4.6, मौलिब्डेनम से 18.2,तथा लौह से 6.2 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि हुई है। इस वृद्धि को प्राप्त करने के लिए 15 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 10 कि.ग्रा. बोरेक्स, 1.0 कि.ग्रा. सोडियम मालिब्डेट एवं 1. 0 लौह (चिलेटेड) प्रति हेक्टेयर दिया गया। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान में किये गये परीक्षणों मे 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 10 कि.ग्रा. बोरेक्स, 1.0 कि.ग्रा. सोडियम मालिब्डेट से क्रमशः22.2, 33.8 एवं 5.8% चना के उत्पादन मे वृद्धि पायी गयी। यहाँ पर बिना सूक्ष्म तत्व प्रयोग से 2062 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर चना का उत्पादन था।

मसूर

मसूर मे उत्पादन वृद्धि के लिए 100 कि.ग्रा. डी. ए. पी. तथा 20–40 कि.ग्रा. पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टेअर देना चाहिए। गन्धक की कमी को पुरा करने के लिए 20–30 कि.ग्रा. गंधक प्रति हेक्टेअर प्रयोग करना चाहिए। सूक्ष्म तत्वों द्वारा उत्पादन वृद्धि के लिए विभिन्न स्थानों पर किये गये प्रशिक्षणों से ज्ञात होता है कि मसूर मे सबसे ज्यादा उत्पादन वृद्धि (53.3 प्रतिशत) 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट के प्रयोग से हुई। मसूर 2.0 कि.ग्रा. मौलिब्डेनम के प्रयोग से 704 प्रतिशत तथा 10 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट प्रति हेक्टेअर के प्रयोग से 17.63 प्रतिशत की उत्पादन मे वृद्धि पायी गयी है।

मटरः पूर्व विकसित मटर की प्रजातियों 100 कि.ग्रा. डी. ए. पी. देने से संतोषजनक परिणाम प्राप्त होते थे। परन्तुअब अधिक पैदावार देने वाली बौनी प्रजातियां काफी प्रचलन मे हैं। इनके उत्पादन के लिए 30–40 कि.ग्रा. नत्रजन तथा 40–60 कि.ग्रा. फास्फोरस के साथ 20–40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेअर देना अनिवार्य है। अन्य दलहनी फसलों की भाँति इसके लिए भी 15–20 कि.ग्रा. गंधक, 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट व 10 कि.ग्रा. बोरेक्स सफल उत्पादन के लिए देना चाहिए।

राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से लाभ :

1. इसके प्रयोग से 10–30 किलो रासायनिक नत्रजन की बचत होती है।
2. इसके प्रयोग से फसल की उपज 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
3. राइजोबियम जीवाणु कुछ हारमोन एवं विटामिन भी बनाते हैं, जिससे पौधों की ब भी अच्छा होता है।
4. इन फसलों के बाद बोई जाने वाली फसलों में भी भूमि की उर्वराशक्ति अधिक होने से पैदावार अधिक मिलती है।

प्रयोग में सावधानियाँ :

1 राइजोबियम जीवाणु फसल विशिष्ट होता है। अतः पैकेट पर लिखी फसल में ही प्रयोग करें।
2 जैव उर्वरक को धूप व गर्मी से दूर किसी सूखी एवं ठंड़ी जगह में रखें।
3 जैव उर्वरक या जैव उपचारित बीजों को किसी भी रसायन या रासायनिक खाद के साथ न मिलायें।
4 यदि बीजों पर फंफूदी नाशी का प्रयोग करना हो तो बीजों को पहले फफूंदीनाशी से उपचारित करें तथा फिर जैव उर्वरक से उपचारित करें।
5 जैव उर्वरक का प्रयोग पैकेट पर लिखी अन्तिम तिथि से पहले ही कर लेना चाहिए।
6 जैव उर्वरक किसी प्रमाणित संस्था से ही क्रय करें अन्यथा उसके जीवाणु क्रियाशील नहीं होते हैं।

फसल पद्धति में प्रबन्धन

खेती की सघन पद्धतियों के फलस्वरुप दलहनी फसलें बहुफसली पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गयी है। फसल पद्धति मे उर्वरक प्रयोग फसलों की पोषक तत्वों के उपयोग के अनुसार निर्भर करता है। जिससे की उर्परक एवं खाद की मात्रा आगे आने वाली फसल मे कम या अधिक हो सकती है। उदाहरण स्वरुप आलू की खेती के बाद ग्रीष्मकालीन मूँग मे नत्रजन की बचत की जा सकती है। इसी प्रकार राजमा, आलू की सहफसली खेती में भी नत्रजन की बचत की जा सकती है। अरहर–गेहूँ फसल चक्र मे एक फसल में संस्तुत से कम फास्फोरस (30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेअर) देने से भी अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है। गौण एवं सूक्ष्म तत्वों के फसल उत्पादन मे प्रयोग से पता चलता है कि इन तत्वों (गंधक,जस्ता, बोरान,मौलिब्डेनम इत्यादि) का प्रयोग पहली फसल मे करें। दूसरी मे इनके अवशेष का अच्छा लाभ मिलता है और पैदावार अच्छी होती है। भरतीय दलहन अनुसधान संस्थान मे अरहर–गेहूँ मे किये गये परीक्षण इसके प्रमाण हैं।

दलहनी फसलों की जैविक खेती

दलहनी फसलें न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है बल्कि बहुत से पोशक तत्वों जैसे फास्फोरस इत्यादि को धुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध कराती है। जैविक खेती के लिए दलहनी फसलें काफी उपयुक्त है और कार्बनिक अवयवों के प्रयोग से अच्छी पैदावार देती हैं। भरतीय दलहन अनुसधान मे मक्का

राइजोबियम कल्चर की प्रजाति एवं फसलः

क.सं.	समूह	प्रजाति	फसल	नत्रजन मात्रा (किग्रा/हे.)
1	मटर	राइजोबियम लैग्यूमिनोसेरस	चना,मटर,मूंग,उर्द,अरहर	62–132
2	सोयाबीन	राइजोबियम जेपोनिकम	सोयाबीन	57–105
3	लेबिया	राइजोबियम फेसिओसी	राजमा, लोबिया	57–105
4	अल्फा–अल्फा	राइजोबियम मेलीलोटो	मेंथी, सेंजी	100–150
5	क्लोवर	राइजोबियम ट्राइफोलियम	ब्रसीम, लूसर्न	100–200
6	ल्यूपिन	राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन, औलरथोमय	70–80

एवं धान फसल पद्धति दीर्घकालीन प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि दलहनी फसलें जैसे चना, अरहर एवं मूँग कार्बनिक तत्वों के प्रयोग से अकार्बनिक तत्वों की अपेक्षा या पो ज्यादा उपज देती हैं या बराबर। इसके लिए प्रबन्धन मे पूर्व उगाई गई फसल के अवशेष जमीन मे अच्छी तरह मिला देते हैं। 5 टन प्रति हेक्टयर की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद डालते हैं तथा दलहनी फसलों के बीजों को राइजोबियम एवं फास्फोरस घोलक वैक्टिरिया (पी.एस. बी.) से उपचारित करके बुवाई करते हैं।

अच्छा उत्पादन के लिये पर्णीय छिड़काव में घुलनशील एन.वी.के. का 1.5 किग्रा+बोरान 100 ग्राम को 150 लीटर पानी में घोल को फूल आने की अवस्था पर छिड़काव करें। कीट व रोग प्रबन्धन हेतु उपरोक्त घोल के साथ ऐसीटाम्प्रिड 200 ग्राम व मेन्काजेब + कार्बेन्डाजिम 750 ग्राम प्रति एकड़ की दर से स्प्रे करें।

(पृष्ठ 12 का शेष)

और पौधे से पौध (थाले से थाले) की दूरी 45 से 60 से0मी0 रखनी चाहिए। अच्छी प्रकार से तैयार किये गये खेत में 2–5 मीटर की दूरी पर 50–60 से0मी0 चौड़ी नाली बनाकर नाली के दोनों किनारों पर बुआई करते हैं।

खाद एवं उर्वरक

सामान्य रूप से 20–25 टन सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद को खेत तैयार करते समय मिटटी में मिला देनी चाहिए। इसके बाद एक हेक्टेयर खेत के लिए 80 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस, तथा 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से तत्व के रूप में देनी चाहिए। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दें। शेष नाइट्रोजन की दो बराबर भागों में बात कर बुआई के लिए लगभग 20–30 दिनों बाद नालियों ट्राप ड्रेसिंग करे और गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ाये और दूसरी मात्रा पौधे की बढ़वार के समय (40–45 दिनों बाद) लगभग फूल निकलने से पहले ट्रपड्रेसिंग के रुप में दें। एन0पी0के0 18:18:18 का पर्णणीय छिड़काव करना लाभदायक है।

सिंचाई

खरीफ ऋतु में खेत की सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु वर्षा न होने पर सिंचाई की आवश्यकता 10–15 दिन के अन्तराल पर पड़ती है। अधिक वर्षा के समय पानी के निकास के लिए नालियों का गहरा व चौड़ा होना आवश्यक है। गर्मियों में अधिक तापमान होने के कारण 4–5 दिन पर सिंचाई करना चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण

वर्षा ऋतु या गर्मी में सिंचाई के बाद खेत में काफी खरपतवार उग आयें हो तो उनको खुरपी के सहारे से निकाल देना चाहिए। करेले में पौधे की वृद्धि एवं विकास के लिए 2–3 बार गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देना चाहिए।

सहारा देना

करेले की लताओं को लकड़ी का सहारा देने से या मचान पर चढ़ा देने से फल जमीन के सम्पर्क से दूर रहते हैं। इससे फलों का आकार एवं रंग अच्छा रहता है तथा पैदावार भी बढ़ जाती है। मचान पर फल लगने से सड़ते नहीं है। इसके लिए प्रत्येक पौधे जब 30 सेमी0 लम्बे हो जाये तो नायलान या जूट की रस्सी के सहारे मचान तक चढ़ाया जाता है। सामान्यतः मचान की ऊंचाई 4.5 फीट तक रखते है।

फलों की तुड़ाई

जब फलों का रंग गहरे हरे से हल्का हरा पड़ना शुरू हो जाये तो फलों की तुड़ाई करने के लिए उत्तम माना जाता है। फलों की तुड़ाई एक निश्चित अन्तराल पर करते रहना चाहिए, ताकि फल कड़े न हो अन्यथा उनकी बाजार में मांग कम होती है। बोने के 60–75 दिन बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं। फलों के तुड़ाई का कार्य हर तीसरे दिन करना चाहिए जिससे पौधे पर ज्यादा फल लगे।

मक्का की वैज्ञानिक खेती

उमेश बाबू*, राम भरोसे** एवं के0एम0 सिंह***

मक्का, एक प्रमुख खाद्य फसल हैं। इसे भुट्टे की रूप में भी खाया जाता है। भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर उँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रो तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है तथा बलुई, दोमट मिट्टी मक्का की खेती के लिये बेहतर समझी जाती है, मक्का खरीफ ऋतु की फसल है, परन्तु जहां सिचाई के साधन हैं वहां रबी और खरीफ की अगेती फसल के रूप मे ली जा सकती है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का बहुत अच्छा स्रोत है। यह एक बहुपयोगी फसल है व मनुष्य के साथ– साथ पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव भी है तथा औद्योगिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है। चपाती के रूप मे, भुट्टे सेंककर, मधु मक्का को उबालकर कॉर्नफलेक्स, पॉपकार्न, लइया के रूप मे आदि के साथ–साथ अब मक्का का उपयोग कार्ड आइल, बायोफ्यूल के लिए भी होने लगा है। लगभग 65 प्रतिशत मक्का का उपयोग मुर्गी एवं पशु आहार के रूप मे किया जाता है। साथ ही साथ इससे पौष्टिक रूचिकर चारा प्राप्त होता है। भुट्टे काटने के बाद बची हुई कड़वी पशुओं को चारे के रूप मे खिलाते हैं।

औद्योगिक उपयोग

दृष्टि से मक्का मे प्रोटिनेक्स, चॉक्लेट पेन्ट्स स्याही लोशन स्टार्च कोका–कोला के लिए कॉर्न सिरप आदि बनने लगा है। बेबीकार्न मक्का से प्राप्त होने वाले बिना परागित भुट्टों को ही कहा जाता है। बेबीकार्न का पौष्टिक मूल्य अन्य सब्जियों से अधिक है।

जलवायु एवं भूमि–

मक्का उष्ण एवं आर्द जलवायु की फसल है। इसके लिए ऐसी भूमि जहां पानी का निकास अच्छा हो उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी–

खेत की तैयारी के लिए पहला पानी गिरने के बाद जून माह मे हैरो करने के बाद पाटा चला देना चाहिए। यदि गोबर के खाद का प्रयोग करना हो तो पूर्ण रूप से सड़ी हुई खाद अन्तिम जुताई के समय जमीन मे मिला दें। रबी के मौसम मे कल्टीवेटर से दो बार जुताई करने के उपरांत दो बार हैरो करना चाहिए।

बुवाई का समय–

1. खरीफ – जून से जुलाई तक।
2. रबी – अक्टूबर से नवम्बर तक।
3. जायद – फरवरी से मार्च तक।

कम्पोजिट प्रजातियां–

सामान्य अवधि वाली– चंदन मक्का–1
जल्दी पकने वाली– चंदन मक्का–3
अत्यंत जल्दी पकने वाली– चंदन सफेद मक्का–2

बीज की मात्रा

संकर जातियां – 12 से 15 किलो/हे
कम्पोजिट जातियां – 15 से 20 किलो/हे
हरे चारे के लिए – 40 से 45 किलो/हे
(छोटे या बड़े दानो के अनुसार भी बीज की मात्रा कम या अधिक होती है।)

बीजोपचार– बीज को बोने से पूर्व किसी फंफूदनाशक दवा जैसे थीरम या एग्रोसेन जी.एन. 2.5–3 ग्रा./कि. बीज का दर से उपचारीत करके बोना चाहिए। एजोस्पाइरिलम या पी.एस.बी.कल्चर 5–10 ग्राम प्रति किलो बीज का उपचार करें।

पौध अंतरण

1.शीघ्र पकने वालीः कतार से कतार–60 से.मी. पौधे से पौधे–20 से.मी.
2.मध्यम देरी से पकने वालीः कतार से कतार–75 से.मी. पौधे से पौधे–25 से.मी.
3.हरे चारे के लिए कतार से कतारः 40 से.मी. पौधे से पौधे–25 से.मी.

बुवाई का तरीका

वर्षा प्रारंभ होने पर मक्का बोना चाहिए। सिंचाई का साधन हो तो 10 से 15 दिन पूर्व ही बोनी करनी चाहिये इससे पैदावार मे वृध्दि होती है। बीज की बुवाई मेंड़ के किनारे व उपर 3–5 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए। बुवाई के एक माह पश्चात मिट्टी चढ़ाने का कार्य करना चाहिए। बुवाई किसी भी विधी से की जाय

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी.पी.बी.), ***वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र श्रावस्ती, ***वरिष्ठ प्रसार अधिकारी, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या

परन्तु खेत मे पौधों की संख्या 55–80 हजार/हेक्टेयर रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा

- शीघ्र पकने वाली : 80:50:30 किग्रा (एन.पी.के.)
- मध्यम पकने वालीः 120:60:40 (एन.पी.के.)
- देरी से पकने वालीः 120:75:50 (एन.पी.के.)

भूमि की तैयारी करते समय 5 से 8 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत मे मिलाना चाहिए तथा भूमि परीक्षण उपरांत जहां जस्ते की कमी हो वहां 25 कि.ग्रा./हे जिंक सल्फेट वर्षा से पूर्व डालना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक देने की विधी

1. नत्रजन –

- 1/3 मात्रा बुवाई के समय, (आधार खाद के रूप मे)
- 1/3 मात्रा लगभग एक माह बाद, (साइड ड्रेसिंग के रूप में)
- 1/3 मात्रा नरपुष्प (मंजरी) आने से पहले

2. फास्फोरस व पोटाश रू–

इनकी पुरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 5 से.मी. नीचे डालना चाहिए। चुकी मिट्टी मे इनकी गतिशीलता कम होती है, अतः इनका निवेशन ऐसी जगह पर करना आवश्यक होता है जहां पौधो की जड़ें हो।

निराई–गुड़ाई

बोने के 15–20 दिन बाद डोरा चलाकर निंदाई–गुड़ाई करनी चाहिए या रासायनिक निंदानाशक मे एट्राजीन नामक निंदानाशक का प्रयोग करना चाहिए। एट्राजीन का उपयोग हेतु अंकुरण पूर्व 600–800 ग्रा./एकड़ की दर से छिड़काव करें। इसके उपरांत लगभग 25–30 दिन बाद मिट्टी चढावें।

अन्तरवर्ती फसलें

मक्का के मुख्य फसल के बीच निम्नानुसार अन्तरवर्ती फसलें लीं जा सकती है :–

मक्का– उड़द, बरबटी, ग्वार, मूंग (दलहन)
मक्का–सोयाबीन, तिल (तिलहन)
मक्का– सेम, भिण्डी, हरा धनिया (सब्जी)
मक्का –बरबटी, ग्वार (चारा)

सिंचाई

मक्का के फसल को पुरे फसल अवधि मे लगभग 400–600 एम.एम. पानी की आवश्यकता होती है तथा इसकी सिंचाई की महत्वपूर्ण अवस्था पुष्पन और दाने

किस्म

संकर किस्म	अवधि (दिन मे)	उत्पादन (क्विं/हे.)
पूसा HM–8	89	60–80
पूसा HM–9	88–111	75–100
डेक्कन–101	105–115	60–65
गंगा–11	100–105	60–70
डेक्कन–103	110–115	60–65

भरने का समय है। इसके अलावा खेत मे पानी की निकासी भी अतिआवश्यक है।

उपज

1. शीघ्र पकने वाली : 50–60 कु./हेक्टेयर
2. मध्यम पकने वाली : 60–65 कु./हेक्टेयर
3. देरी से पकने वाली : 65–70 कु./हेक्टेयर

कटाई व गहाई

फसल अवधि पूर्ण होने के पश्चात अर्थात् चारे वाली फसल बोने के 60–65 दिन बाद, दाने वाली देशी किस्म बोने के 75–85 दिन बाद, व संकर एवं संकुल किस्म बोने के 90–115 दिन बाद तथा दाने मे लगभग 25 प्रतिशत् तक नमी हाने पर कटाई करनी चाहिए।

कटाई के बाद मक्का फसल में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गहाई है इसमें दाने निकालने के लिये सेलर का उपयोग किया जाता है। सेलर नहीं होने की अवस्था में साधारण थ्रेशर में सुधार कर मक्का की गहाई की जा सकती है इसमें मक्के के भुट्टे के छिलके निकालने की आवश्यकता नहीं है। सीधे भुट्टे सुखे होने पर थ्रेशर में डालकर गहाई की जा सकती है साथ ही दाने का कटाव भी नहीं होता।

भण्डारण

कटाई व गहाई के पश्चात प्राप्त दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर भण्डारित करना चाहिए। यदि दानों का उपयोग बीज के लिये करना हो तो इन्हें इतना सुखा लें कि आर्द्रता करीब 12 प्रतिशत रहे। खाने के लिये दानों को बॉस से बने बण्डों में या टीन से बने ड्रमों में रखना चाहिए तथा 3 ग्राम वाली एक सेल्फास की गोली प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से ड्रम या बण्डों में रखें। रखते समय सेल्फास की गोली को किसी पतले कपडे में बॉधकर दानों के अन्दर डालें या एक ई.डी.बी. इंजेक्शन प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से डालें। इंजेक्शन को चिमटी की सहायता से ड्रम में या बण्डों में आधी गहराई तक ले जाकर छोड़ दें और ढक्कन बन्द कर दें।

तरल उर्वरकों का कृषि में प्रयोग

शिवदत्त पाण्डेय*, आर. आर. सिंह** एवं के.एम.सिंह***

परिचयः कृषि के निरंतर विकसित हो रहे परिदृश्य में, कुशल और टिकाऊ पोषक तत्त्व प्रबंधन रूप में तरल उर्वरकों को उदय हुआ है। जैसे–जैसे वैश्विक जनसंख्या बढ़ रही है और भोजन की मांग तेज हो रही है, कृषि क्षेत्र को कम संसाधनों के साथ अधिक उत्पादन करने की महत्वपूर्ण चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इस संदर्भ में, तरल उर्वरक एक गतिशील और परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरे हैं, जिन्होंने पोषक तत्व प्रबंधन के पारंपरिक दृष्टिकोण को नया आकार दिया है। पौधों को उनकी वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने में उर्वरकों की मौलिक भूमिका है। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम, जिन्हें प्राथमिक पोषक तत्व कहा जाता है, पौधों के पोषण की आधारशिला बनाते हैं। हालाँकि ठोस उर्वरक इन आवश्यक तत्वों को प्रदान करने के लिए पारंपरिक विकल्प रहे हैं, तरल उर्वरक पोषक तत्वों के अनुप्रयोग और प्रबंधन में एक आदर्श बदलाव लाते हैं। तरल उर्वरक पौधे के विकास चक्र के विभिन्न चरणों में फसलों की विशिष्ट आवश्यकताओं ध्यान में रखकर त्वरित उपलब्धता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनाये गए हैं । ठोस उर्वरकों के विपरीत, ये उर्वरक पानी में घुलकर पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं । यह विशेषता विशेष रूप से फायदेमंद है क्योंकि यह तेजी से पोषक तत्व ग्रहण करने की सुविधा प्रदान करती है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि फसलों को वह पोषण सही समय पर मिले जिसकी उन्हें आवश्यकता है।

आज, किसान के पास दानेदार और तरल उर्वरकों के बीच चयन का विकल्प है और हाल के वर्षों में तरल उर्वरक की लोकप्रियता बढ़ी है । तरल उर्वरकों के प्रयोग से फसलों के पोषण के तरीके में नई क्रांति आ गई है। पारंपरिक दानेदार या ठोस उर्वरकों के विपरीत, तरल फॉर्मूलेशन पोषक तत्व वितरण, सटीक अनुप्रयोग और पर्यावरणीय स्थिरता के संदर्भ में कई लाभ प्रदान करते हैं। यह लेख कृषि में तरल उर्वरकों की भूमिका और प्रभाव की पड़ताल करता है, फसल विकास को अनुकूलित करने और टिकाऊ कृषि प्रथाओं को सुनिश्चित करने में उनके महत्व पर प्रकाश डालता है।

फसल उत्पादन में तरल उर्वरको के कुछ प्रमुख प्रभावः फसल उत्पादन में तरल उर्वरक (जैसे कि यूरिया, पोटाश, नाइट्रोजन, फास्फेट, और अन्य मिश्रण) का प्रभाव विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है। ये तरल उर्वरक फसलों को पोषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उत्पादन में सुधार कर सकते हैं। यहां कुछ मुख्य प्रभाव हैं:

1)पोषण की पूर्तिः तरल उर्वरक पौधों के लिए आवश्यक पोषण सामग्री प्रदान करते हैं। नाइट्रोजन, पोटाश, फास्फेट, और अन्य मिश्रण फसल के सही विकास और उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं।

2)फलने और फूलने को बढ़ावाः ये उर्वरक पौधों की ऊर्जा संश्लेषण को बढ़ाते हैं जिससे पौधे अधिक फलने और फूलने की क्षमता प्राप्त करते हैं।

3)फसल की योग्यता में सुधारः उर्वरकों का सही समन्वय फसल की योग्यता में सुधार कर सकता है। उचित प्रमाणों में नाइट्रोजन, पोटाश, और फास्फेट से भरा मिश्रण फसल को सही मात्रा में पोषित करता है और यह फसल की प्रदर्शन क्षमता को बढ़ा सकता है।

4)पौधों के संरक्षणः तरल उर्वरक पौधों को बीमारियों और कीटाणुओं से बचाने में मदद कर सकते हैं, जिससे फसल का नुकसान कम होता है और उत्पादन बढ़ता है।

5)बिजाई पूर्व–आवश्यकता को पूरा करनाः तरल उर्वरक बिजाई पूर्व में भूमि की शक्ति को बढ़ा सकते हैं और बिजाई के पहले फसल की अच्छी शुरुआत के लिए आवश्यक हो सकते हैं।

तरल उर्वरकों से लाभ

क्षेत्र एवं फसल विशेष की परिस्थितियों और

*परास्नातक छात्र, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान, **प्राध्यापक मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान, ***प्राध्यापक शस्य विज्ञान विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्विद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

आवश्यकताओं के आधार पर, तरल उर्वरक ठोस या दानेदार उर्वरकों की तुलना में कई लाभ प्रदान करते हैं। तरल उर्वरकों के उपयोग के कुछ लाभ इस प्रकार हैं:

1)पोषक तत्वों की उपलब्धता: तरल उर्वरकों में घुलनशील रूप में पोषक तत्व होते हैं, जिससे वे पौधों को तुरंत उपलब्ध हो जाते हैं। यह पोषक तत्वों की कमी को शीघ्रता से दूर करने, स्वस्थ पौधों के विकास को बढ़ावा देने में मदद करता है।

2)सटीक खेती: तरल उर्वरक अधिक सटीक अनुप्रयोग की अनुमति देते हैं, जिससे किसानों को पोषक तत्वों के सही संयोजन के साथ विशिष्ट क्षेत्रों या फसलों को लक्षित करने में मदद मिलती है। इससे पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता को अनुकूलित करने और अपशिष्ट को कम करने में मदद मिलती है।

3)समान वितरण: तरल उर्वरकों को सिंचाई प्रणाली, स्प्रेयर या ड्रिप सिस्टम का उपयोग करके पूरे खेत या बगीचे में आसानी से और समान रूप से वितरित किया जा सकता है। यह समान अनुप्रयोग यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि सभी पौधों को समान मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त हों।

4)पोषक तत्वों के नुकसान का कम जोखिम: ठोस उर्वरक लीचिंग या वाष्पीकरण के माध्यम से पोषक तत्वों के नुकसान के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं, खासकर भारी वर्षा या उच्च तापमान की स्थिति में। तरल उर्वरकों से इन हानियों की संभावना कम होती है क्योंकि वे पहले से ही घोल के रूप में होते हैं।

5)अन्य आदानों के साथ अनुकूलता: तरल उर्वरकों को अन्य तरल कृषि आदानों, जैसे कीटनाशकों या शाकनाशी के साथ आसानी से मिलाया जा सकता है, जिससे किसानों के लिए एक ही बार में कई उपचार लागू करना सुविधाजनक हो जाता है।

6)भंडारण और रख–रखाव: तरल उर्वरकों को संग्रहीत करना और संभालना अक्सर आसान होता है, क्योंकि वे कम भारी होते हैं ।

7)पर्णीय अनुप्रयोग: तरल उर्वरक पर्णीय अनुप्रयोग के लिए उपयुक्त होते हैं, जहाँ पोषक तत्वों का सीधे पत्तियों पर छिड़काव किया जाता है। यह पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है, खासकर जब मिट्टी की स्थिति जड़ों के विकास के लिए इष्टतम नहीं होती है।

8)पर्यावरणीय प्रभाव में कमी: उचित रूप से प्रबंधित तरल उर्वरक अनुप्रयोग पोषक तत्वों के अपवाह से जुड़े पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में योगदान करते हैं। जब सही ढंग से उपयोग किया जाता है, तो तरल उर्वरकों के परिणामस्वरूप जल निकायों में पोषक तत्वों का प्रवाह कम हो सकता है, जो जल प्रदूषण को कम करने में मदद कर सकता है।

तरल उर्वरकों की कमियाँ / सीमाएँ

जबकि तरल उर्वरक आधुनिक कृषि में कई लाभ प्रदान करते हैं, उनके उपयोग से जुड़ी कुछ कमियों और सीमाओं को स्वीकार करना आवश्यक है। पोषक तत्व प्रबंधन के बारे में जानकारीपूर्ण निर्णय लेने के लिए किसानों और कृषिविदों के लिए इन चुनौतियों को समझना महत्वपूर्ण है। यहां तरल उर्वरकों की कुछ प्रमुख कमियां और सीमाएं दी गई हैं:

1)लागत: तरल उर्वरकों का उत्पादन और खरीद उनके दानेदार समकक्षों की तुलना में अधिक महंगा हो सकता है। तरल फॉर्मूलेशन की विनिर्माण प्रक्रियाओं, परिवहन और भंडारण में अधिक लागत लग सकती है, जिससे कुछ किसानों के लिए समग्र आर्थिक व्यवहार्यता प्रभावित हो सकती है।

2)सीमित भंडारण अवधि: सूखे फॉर्मूलेशन की तुलना में तरल उर्वरकों की शेल्फ लाइफ अक्सर कम होती है। तापमान, सूर्य के प्रकाश के संपर्क और रासायनिक प्रतिक्रियाओं जैसे कारकों के कारण समय के साथ उनके क्षरण की संभावना अधिक होती है। तरल उर्वरकों की प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए उचित भंडारण की स्थिति महत्वपूर्ण है।

3)अधिक उपयोग एवं फसल जलने का जोखिम: इन उर्वरकों की तरल प्रकृति के कारण, यदि प्रयोग के दौरान मात्रा का ठीक से आंकलन नहीं किया गया तो अधिक उपयोग का खतरा होता है। अधिक उपयोग से पोषक तत्वों में असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण और उत्पादन लागत में वृद्धि हो सकती है। साथ ही तरल उर्वरकों को यदि ठीक से पतला न किया जाए (पानी

की समुचित मात्रा में न रखा जाये) तो फसल जलने का खतरा रहता है।

4)सीमित पोषक तत्व धीमी रिहाईः धीमी गति से जारी करने के लिए डिज़ाइन किए गए कुछ दानेदार उर्वरकों के विपरीत, तरल उर्वरक आमतौर पर अधिक तुरंत उपलब्ध रूप में पोषक तत्व प्रदान करते हैं। यह विभिन्न विकास चरणों में विशिष्ट पोषक तत्वों की आवश्यकताओं वाली फसलों के लिए आदर्श नहीं हो सकता है, उन जरूरतों को पूरा करने के लिए बार–बार प्रयोग करने की आवश्यकता होती है।

5)परिशुद्ध उपकरण पर निर्भरताः तरल उर्वरकों के कुशल अनुप्रयोग के लिए अक्सर स्प्रेयर या फर्टिगेशन सिस्टम जैसे विशेष और सटीक अनुप्रयोग उपकरण की आवश्यकता होती है। जिन किसानों के पास ऐसे उपकरणों तक पहुंच या विशेषज्ञता की कमी है, उन्हें तरल उर्वरकों को प्रभावी ढंग से अपनाने में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

6)जल संरक्षण की चुनौतीः अधिक तरल उर्वरक का प्रयोग करने से जल संकट बढ़ सकता है, जिससे जल संवाद में कमी हो सकती है।

तरल उर्वरकों के प्रयोग करते समय ध्यान रखने योग्य बाते

तरल उर्वरक का सही तरीके से उपयोग करना बहुत महत्वपूर्ण है ताकि फसलों को सही मात्रा में पोषित किया जा सके और उत्पादकता में वृद्धि हो। यहां कुछ सुझाव दिए गए हैं जो तरल उर्वरक का सही तरीके से उपयोग करने में मदद कर सकते हैंः

1)मात्रात्मक अनुसंधानः अपनी भूमि का मात्रात्मकअनुसंधान करें ताकि आप जान सकें कि आपकी फसलों को कौन–कौन से पोषण आवश्यक हैं। जल, मिट्टी, और मौसम की शर्तों का विशेष ध्यान दें ताकि आप सही तरल उर्वरक का चयन कर सकें।

2)उर्वरकों की सही मात्राः उर्वरकों की सही मात्रा निर्धारित करने के लिए अपनी फसल की प्रजाति, उम्र, और विकास स्थिति को ध्यान में रखें।अधिक उर्वरक से बचें, क्योंकि यह पौधों को नुकसान पहुंचा सकता है और पर्यावरण को प्रभावित कर सकता है।

3)उर्वरकों की सही समय सीमाः उर्वरकों को प्रदान करने का सही समय निर्धारित करें। अधिकांश फसलों के लिए बूट स्टेज, पुष्पन अवस्था, और फलों के विकसन के समय पर उर्वरकों की आवश्यकता होती है।

4)जल संचार का ध्यान रखेंः उर्वरकों को जल संचार द्वारा प्रदान करें ताकि पौधों द्वारा उर्वरकों को सही तरीके से लिया जा सके। फसलों के लिए स्थानीय जल स्रोतों का उपयोग करने का प्रयास करें।

5)पूर्व–पूरक प्रौद्योगिकियाँः जैसे कि धान की जड़ों में निचले सुत्र की रोग से बचाव के लिए विशेष उर्वरक का उपयोग करना।

नैनो उर्वरक

नैनो उर्वरक छोटे कणों से बने होते हैं जिन्हें नैनोमीटर या एक मीटर के एक अरबवें हिस्से में मापा जाता है। वे विशिष्ट पौधों के ऊतकों को पोषक तत्वों की लक्षित डिलीवरी प्रदान करने में सक्षम हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि में सुधार होता है और पैदावार अधिक होती है। कुछ नैनो उर्वरक भी तरल उर्वरक की तरह प्रयोग किये जा सकते हैं ।

1)नैनो डीएपीः इफको नैनो डीएपी सभी फसलों के लिए उपलब्ध नाइट्रोजन और फास्फोरस का एक कुशल स्रोत है और खड़ी फसलों में नाइट्रोजन और फास्फोरस की कमी को ठीक करने में मदद करता है। नैनो डीएपी फॉर्मूलेशन में नाइट्रोजन (8.0% N w/v) और फास्फोरस (16.0% P2O5 w/v) होता है।

2)नैनो यूरियाः नैनो यूरिया में कुल नाइट्रोजन का 4. 0 % (w/v) होता है। नैनो नाइट्रोजन कण का आकार 20–50 एनएम तक भिन्न होता है। ये कण पानी में समान रूप से फैले हुए हैं। नैनो यूरिया अपने छोटे आकार (20–50 एनएम) और उच्च उपयोग दक्षता (>80%) के कारण पौधे के लिए नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाता है।

3)अमोनियम ह्यूमेटः अमोनियम ह्यूमेट एसिड अमोनियम नमक है, जो पानी में, पाउडर और दाने के रूप में घुलनशील है। ह्यूमिक एसिड 50 % मिनट, नाइट्रोजन 5 % के साथ। आधार उर्वरक और सिंचाई के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

सफलता की कहानी

के.एम. सिंह, अशोक कुमार एवं आर.आर. सिंह

कृषक का नाम	:	**लाल सिंह**
पिता का नाम	:	**श्री चंद्रचूर सिंह**
ग्राम	:	**जोरियम**
ब्लॉक	:	**मिल्कीपुर**
तहसील	:	**मिल्कीपुर**
जिला	:	**अयोध्या**
मोबाइल	:	**9651720409**

प्रारम्भिक स्थिति : एलआईसी–60 से 70 हजार वार्षिक

कृषि वैज्ञानिक सम्पर्क

अपर प्रसार निदेशक डॉ. आर.आर. सिंह एवं कृषि वैज्ञाानिक (के.वी.के, कठौरा) डॉ. ए.के. सिंह से वर्ष 2019 में कृषक का सम्पर्क हुआ। डॉ. सिंह ने तकनीकी कृषि सब्जी व फूल की खेती के बारे में बताया साथ उसी समय रामजन्म भूमि का एतिहासिक निर्णय आया जिसके कारण सब्जी की खेती न करके फूल की खेती शुरू कर दी।

वर्तमान स्थिति

आय का स्रोत

1. एलआईसी का कार्य छोड़ दिया।

2. फूलों की खेती	2 एकड़	4 से 5 लाख / वार्षिक
3. पोल्ट्री फार्म	6 हजार	3.4 लाख / वार्षिक
4. मछली पालन	1.75 एकड़	1 से 1.5 लाख / वार्षिक
5. धान्य फसलें	1 एकड़	3 से 4 लाख / वार्षिक
कुल	4.75 एकड़	8.3 से 11.9 लाख / वार्षिक

सामाजिक परिवर्तन

फूल की खेती करने से प्रतिदिन फूलों की तुड़ाई की जाती है, जिससे ग्रामीण युवाओं को रोजगार के अवसर एवं परिवार में प्रतिदिन आय शुरू हुई एवं जिसके कारण बच्चों की पढ़ाई में सहयोग हुआ परिवारिक खर्च व स्वयं खर्च आसानी से निकल जा रहा है।

भविष्य योजना

फूल की खेती के साथ मधुमक्खी पालन कार्य, पोली हाऊस बनाकर संरक्षित खेती कर अधिक आय के स्रोत स्थापित करने की योजना है।

पावन धाम अयोध्या

चहुँ दिशि होत है पुकार, न्यारी राम नगरी।
जग कै राम खेवनहार, हैं अवध की नगरी।।
यू0पी0 मा है धाम अयोध्या, सरयू तट के तीर,
दक्षिण दिशि गोमती नदी है, जेहि कै पावन नीर,
घर घर मन्दिर स्वर्गद्वार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 1

राम दास हनुमान गढ़ी है, कनक भवन छवि न्यारी,
जैन कै मन्दिर, बड़ी छावनी, सीता रसोई प्यारी,
राम पैड़ी जलधार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 2

अर्न्तराश्ट्रीय एयर पोर्ट है मेडिकल कालेज भारी,
अवध विश्वविद्यालय शोभित, लता चौक उँजियारी,
गूँजै बीणा झनकार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 3

नरेन्द्र देव कृशि विश्वविद्यालय, दक्षिण छोर पै आला,
कृशि विज्ञान केन्द्र पच्चीस है, कइयो जिला निराला,
खेती बारी कय प्रचार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 4

कृशि बैज्ञानिक खोज करत हैं, गेहूँ सब्जी धान,
ज्यादा पैदावारी से सब, होये सुखी किसान,
बहिहैं दुधवा केरी धार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 5

मछली पशुपालन के शिक्षा, छात्र छात्रा पावैं,
देश विदेश मा सेवा कइके, कीर्ति ध्वजा फहरावै,
चारिउ ओरिया उँजियार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 6

दशरथ नंदन राम चन्द्र कै, जग मा डंका बाजै,
जनक लली सीता, लक्ष्मण संग, मन्दिर बीच बिराजै,
''अचर्क'' जॉय बलिहार, न्यारी राम नगरी।।
चहुँ दिशि0 ।। 7

रचयिता
श्री इन्द्र जीत सिंह 'अर्चक'
ग्राम व पोस्ट : हलियापुर
जनपद सुलतानपुर, उ0प्र0
मो0 नं0 6392028132

''राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा''

राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।
दुःख कै रतिया सिरानी, सुखी भोर ह्वै गवा।
सरगौ से जन्म भूमि राम का पियारी।
जगत से प्रीति –रीति अवध कै नियारी।
पांच सौ बरिस बाद ई सुदिन आवा।
स्वागत मा राम जी के सुमन बिछावा।
उन्हैं देखै बरे मनवा चकोर ह्वै गवा।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।१!!

देव, नर, किन्नर बजावत बधाई।
गरुण जटायु आये करै अगुवाई।
उहै शुभ घरी राम जनम वाली आई।
त्रेता सी कलियुग मा अहै छबि छाई।
तन है पुलकित मगन मन, मोर ह्वै गवा।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।२!!

अवध कै धरा–धाम पावन पवित्र है।
वेद–शास्त्र गावैं यश महिमा विचित्र है।
पांच सौ वरिस वाला सब कलंक धुलिगा।
दशौ दिशाओं वाला द्वार सब खुलिगा।
माई सरयू नहाये पाप ओर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।३!!

उत्तर मखौड़ा मख भूमि है बखानी
पुत्रेष्टि यज्ञ करवाये ऋषि ज्ञानी।
आदि गंगा गोमती औ तमसा कै घाटी।
है पवित्र चंदनौ से अवध कै माटी।
पूरी वसुधा मा राम –नाम शोर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।४!!

दक्षिण औ पूरब मा सूर्य कुंड धाम है।

चरण पादुका पवित्र, वहीं नंदीग्राम है।
कार्य कालभरत –भुआल कै महान बा।
अमर अयोध्या रही वैदिक प्रमान बा।
भाई –प्रेम केआगे, रिश्ता सब कमजोर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।५!!

विश्वविद्यालय हियां, दुइ–दुइ प्रसिद्धि हैं।
गुरुकुलौ मा पढि –पढि योगी यती सिद्ध हैं।
ऋषि बामदेव आश्रम दक्षिणी दुवारे।
जहां राम जी रहे वशिष्ठ संग पधारे।
उहां पहुंचे पै मनवा विभोर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।६!!

नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय है माना।
बेल,बेर,आंवला है जग मा बखाना।
दुनिया मा सबसे लंबी है इहां कै लौंकी।
तना से ही लगी रहै, काटि जाइ छौंकी।
श्री अन्नौ पै कुलपति कै जोर ह्वै गवा।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।७!!

दलहन औ तिलहन पै बड़ी गहन खोज है।
धान, गेहूं, गन्ना पै होत सदा शोध है।
स्वच्छता, प्रबंधन, अनुसाशन है अच्छा।
ऊसर सुधार, वृक्षारोपण समीक्षा।
बड़ा क्षेत्रफल कै, दूर–दूर छोर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।८!!

धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य हम सबहीं।
सुकृत फला तौ मिला पल तबहीं।
पांच सौ बरिस बाद फिर राम अइहैं।
राम जी का देखि–देखि नयन जुड़इहैं।
राम –राम मय ''अज्ञान ''पोर–पोर ह्वै गवा।।
राम आइगे अवध मा अंजोर ह्वै गवा।।९!!

जय श्रीराम जय जय सियाराम

–––––श्रीकृष्ण द्विवेदी ''अज्ञान ''
चौधरीपुर, कुमारगंज, अयोध्या।
मो.––7376009990

श्री अन्न पैदा करै,
खर्च जाइ अधियाइ।
रोग घटै ताकत बढ़ै,
श्रीअन्न जे खाइ।।
श्री अन्न जे खाइ,
विटामिन सगरिउ पावै।
हृदय रोग, मधुमेह,
कैंसर निकट न आवै।
ज्वार, बाजरा, कोदो, काकुन,
सांवा करैं प्रसन्न।
रागी, चना, जौ और कुट्टू
कहे जायं श्री अन्न।।

जय श्रीराम जय जय सियाराम

–––––श्रीकृष्ण द्विवेदी ''अज्ञान ''
चौधरीपुर, कुमारगंज, अयोध्या।
मो.––7376009990

अब श्री अन्न मिल सब उगाओ सखे।
बिन दवा रोग सारे भगाओ सखे।
रोग रोधी, सभी तत्व परिपूर्ण हैं,
सो रहे हैं कृषकों को जगाओ सखे।।
इष्ट हैं, शिष्ट हैं, श्रेष्ठ आराध्य हैं।
हर जगह, हर घड़ी, हर तरह साध्य हैं।
राम जी जैसा है कौन संसार में,
भक्त रक्षार्थ जो सर्वथा वाध्य हैं।।

जय श्रीराम जय जय सियाराम

–––––श्रीकृष्ण द्विवेदी ''अज्ञान ''
चौधरीपुर, कुमारगंज, अयोध्या।
मो.––7376009990

जनवरी माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. आर.आर. सिंह
प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

(1) दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में बोये गये गेहूँ की प्रथम सिंचाई करके शेष नत्रजन की आधी मात्रा की प्रथम टापड्रेसिंग करें।

(2) गेहूँ की फसल में जिंक की कमी दिखाई पड़ने पर 5 किग्रा जिंक सल्फेट व 20 किग्रा यूरिया 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(3) दलहनी फसलों में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करें।

(4) गन्ने की कटाई भूमि की सतह से करें तथा सिंचाई करके 75 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से दें।

(5) मटर में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करें।

(6) चने में उकठा रोग से नियंत्रण के लिए खेत में अधिक नमी न रहने दें और उस खेत में अगले वर्ष चना न बोयें।

(7) समय से बोये गेहूँ में आवश्यकतानुसार नत्रजन की शेष मात्रा की टापड्रेसिंग करें।

(8) जिस फसल में बालियाँ निकल आई हैं और उनमें कुछ काली बालियाँ दिखायी दें तो उन्हें निकाल कर नष्ट कर दें या गाड़ दें।

(9) गन्ने की कटाई भूमि की सतह से करें तथा सिंचाई करके 75 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से दें।

(10) गन्ने के खेत की तैयारी के लिए सुधरे कृषि यंत्रों डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, सिंह पटेला का प्रयोग करें तथा गन्ने की बुवाई के लिए रिजर गन्ना प्लांटर का प्रयोग करें।

सब्जी एवं उद्यान में

अश्वनी कुमार सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

(1) गर्मी वाले टमाटर की प्रजातियों जैसे एच.एस. 102, पंजाब छुआरा, कल्याणपुर, अंगूरतला आदि के पौध की रोपाई 60:50:50 न.फा.पो. प्रति हेक्टेयर डालने के बाद करें।

(2) गर्मी वाली मूली पूसा चेतकी की बुवाई करें।

(3) तैयार गढ्ढों में अंगूर की व्यवसायिक किस्में जैसे परलेट, ब्यूटी सीडलेस एवं पूसा सीडलेस की रोपाई करें।

(4) आँवला की तोड़ाई तथा बेर, अमरूद के बागों की सिंचाई करें।

(5) टमाटर में पिछैती झुलसा रोग का नियंत्रण आलू की भाँति करें।

(6) गर्मी वाली बैंगन की पौध जो नवम्बर माह में डाली गयी थी उसकी रोपाई लम्बी किस्म के 60 गुणा 60 सेमी तथा गोल वाली किस्म में 75 गुणा 75 सेमी पर करें।

(7) लोबिया की पूसा कोमल, पूसा फागुनी, ऋतुराज, 1552 किस्मों की बुवाई 20 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस तथा 30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से कूड़ों में डालकर करें।

पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के नियंत्रण के लिए 30–35 दिन की अवस्था पर 625 ग्राम 2,4–डी सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत तथा गेहूँसा के नियंत्रण के लिए आइसोप्रोट्यूरान 75 प्रतिशत 1.0 किग्रा को 600–800 लीटर पानी में घोलकर चपटे नाजिल वाले स्प्रेयर से छिड़काव करें।

(2) झुलसा एवं गेरूवी रोग के नियंत्रण के लिए प्रोपीकोनाजोन (टिल्ट) 500 मिली मात्रा 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर गेहूँ की फसल पर छिड़काव करें।

(3) माहू कीट नियंत्रण के लिए 250 मिली फास्फोमिडान 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(4) आलू में पिछेती झुलसा रोग के नियंत्रण के लिए डायथेन एम–45 की 2.5 किग्रा मात्रा को 750–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(5) आम में खर्रा रोग के नियंत्रण के लिए बाविस्टिन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

(6) गुजिया कीट के नियंत्रण के लिए जमीन से 1 मीटर की ऊँचाई पर तने में 30 सेमी चौड़ी पॉलीथीन की पट्टी चिपका दें।

(7) गन्ने के खेत की तैयारी के लिए सुधरे कृषि यंत्रों जैसे डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, सिंह पटेला का प्रयोग करें तथा गन्ने की बुवाई के लिए रिजर गन्ना पलांटर का प्रयोग करें।

(8) बीज उपचार 6 प्रतिशत पारायुक्त रसायन 280 ग्राम अथवा 3 प्रतिशत 530 ग्राम को 125 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर गन्ने के टुकड़े 10 मिनट तक डुबो कर करें।

(9) अरहर व चना में फली छेदक कीट के नियंत्रण के लिए इन्डोक्साकार्ब 14.5 प्रतिशत का 400 मिली प्रति

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

हेक्टेयर छिड़काव करें।
(10) मटर में बुकनी रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक के 0.3 प्रतिशत अथवा कैराथेन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
(11) तिलहनी फसलों में झुलसा, सफेद, गेरूई एवं तुलासिता रोग के नियंत्रण के लिए डायथेन एम–45 के 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।
(12) प्याज में बैंगनी धब्बा रोग के नियंत्रण के लिये 0.3 प्रतिशत ताम्रयुक्त रसायन के घोल का छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. सुरेन्द्र सिंह

विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान)

(1) भैंस में गर्भकाल का समय चल रहा है अतः गर्म होने वाली भैंस को उन्नत नस्ल के भैंसों अथवा कृत्रिम गर्भाधान विधि से गर्भित करा दें तथा ब्याँने वाली गायों की अच्छी देखभाल करें।
(2) अधिक दूध उत्पादन करने वाले पशुओं को हरा चारा के अतिरिक्त उनके आहार में कम से कम 35–40 ग्राम खनिज लवण अवश्य दिया जाये। साथ ही साथ उन्हें संतुलित आहार और पीने के लिए साफ व ताजा पानी दिया जाये।
(3) दुधारू पशुओं एवं बैलों आदि को खुरपका मुँहपका रोग से बचाव हेतु टीकाकरण अवश्य करा दिया जाये।
(4) भेड़ तथा बकरियों को पेट के कीड़े मारने वाली दवा पान कराया जाये।
(5) अधिक दूध तथा मांस उत्पादन हेतु लोबिया तथा मक्का की बुवाई करें।
(6) गर्भित तथा शीघ्र ब्यायी भेड़ों की उचित देखभाल किया जाये।
(7) चूजों के अच्छे बढ़वार के लिए पौष्टिक चूजा आहार के साथ उनके पेय जल में विटामिन तथा एन्टीबायोटिक दवा मिला दिया जाये।
(8) मुर्गियों से अच्छा उत्पादन लेने के लिए उन्हें पौष्टिक आहार के साथ–साथ बरसीम घास भी दिया जाये।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : टमाटर का फल फट जाता है, कैसे बचायें?
(श्री रवीन्द्र पाठक, ग्राम तारून, जनपद अयोध्या)
उत्तर : टमाटर का फल फटने से रोकने के लिए न फटने वाली प्रजातियों की बुवाई करें। टमाटर के खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए 7–10 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करने से फल नहीं फटेगा। रोपाई के एक सप्ताह के अन्दर 0.3 से 0.4 प्रतिशत बोरेक्स (सुहागा) के घोल का छिड़काव तथा 6 से 7 सप्ताह बाद दूसरा छिड़काव और यदि आवश्यक हो तो तीसरा छिड़काव भी इतने ही अन्तराल पर करें। उक्त सान्द्रता का घोल बनाने के लिए 70–90 ग्राम सुहागा 4 लीटर पानी में घोलना चाहिए।

प्रश्न : सरसों की खड़ी फसल में माहू का कीट नियंत्रण कैसे करें?
(श्री जितेन्द्र सिंह, ग्राम बहादुरगंज, जनपद अयोध्या)
उत्तर : सरसों की खड़ी फस्ल में माहू के कीट नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.ए. दवा 3 मिली प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

प्रश्न : आम में बौर आने वाले हैं कौन सी दवा का प्रयोग करें?
(श्री रज्जन, गोपालपुर, जनपद अमेठी)
उत्तर : आम के बौर को खर्रा रोग तथा भुनगा कीट से बचाने के लिए बौर आने के बाद, परन्तु फूल खिलने से पहले 2 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) तथा 1 मिली मोनोक्रोटोफास प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 1 मिली कैराथेन+1मिली मेटासिस्टाक्स का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फल टिकाव के बाद छिड़काव करें।

प्रश्न : रबी में लगने वाले खरपतवारों को कैसे दूर किया जाये?
(श्री गजेन्द्र यादव, ग्राम गयासपुर, जनपद अयोध्या)
उत्तर : रबी में मुख्यतः खरपतवार दो प्रकार के होते हैं। चौड़ी पत्ती वाली खरपतवार जैसे बथुवा, हिरनखुरी, कृष्णनील, गजरी–गजरा आदि को नष्ट करने के लिए बुवाई के 35–50 दिन के अन्दर 2–4 डी सोडियम साल्ट 90 प्रतिशत की 625 ग्राम मात्रा को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर फ्लेट फैन नाजिल से प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। ध्यान रहे कि रबी में गेहूँ की फसल में ही उपरोक्त दवा का प्रयोग करें। यदि गेहूँ के साथ राई, सरसों, चना आदि फसलें बोई गई हैं तो 2,4 डी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। दूसरे तरह के खरपतवार गेहूँसा या गेहूँ का मामा तथा जंगली जई जो कि गेहूँ के उत्पादन में एक समस्या है, को नष्ट करने के लिए आइसोप्रोट्यूरान 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 0.5 किग्रा या 75 प्रतिशत एक किग्रा को 600–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 30–35 दिन के भीतर छिड़काव करें। गेहूँ तथा अन्य दलहनी व तिलहनी जो रबी की मुख्य फसलें हैं। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथलीन नामक दवा का प्रयोग 3.3 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त बाद जमाव के पहले छिड़काव करें।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित